कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास

लेखक

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

मूल्य २)

प्रथम संस्करण

१९५७

विनोद पुस्तक-मन्दिर, आगरा के लिये
कल्याण प्रिंटिंग प्रेस, आगरा द्वारा मुद्रित व प्रकाशित

❀ निवेदन ❀

कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास पाठकों के हाथों में है। इसको लिखने में हमने इस बात का ध्यान रक्खा है कि इससे साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति और देश के आशा-केन्द्र होनहार बालक भी पूर्णतया लाभ उठा सकें। स्वाधीनता-संग्राम की इस कहानी को हमने सरल एवं सुबोध शैली में बड़े ही प्रवाहपूर्ण ढंग से लिखा है। इतिहास स्वयं अपनी कहानी कहेगा। अतः इससे अधिक इसके सम्बन्ध में कहें भी तो क्या? आशा है पाठकों को हमारा यह प्रयास पसन्द आयगा।

२० फरवरी '४७ } — क्षेमचन्द्र 'सुमन'

क्रम-सूची

❀ वंदेमातरम् ❀

वंदेमातरम् ।

सुजलां, सुफलां, मलयज शीतलां

शस्य श्यामलां मातरम् ।

शुभ्र-ज्योत्सना-पुलकित-यामिनीं,

फुल्ल-कुसुमति-द्रुमदल शोभिनीं,

सुहासनीं सुमधुर भाषिणीं,

सुखदां वरदां मातरम् ।

त्रिंशत् कोटि कंठ कलकल निनाद कराले,

द्विसप्तकोटिभुजैधृतखर करवाले,

अबला केन मां एके बले !

बहुबल धारिणीं नमामि तारिणीं

रिपुदल वारिणीं मातरम् ।

तुमि विद्या, तुमि धर्म्म,

तुमि हृदि, तुमि मर्म्म,

त्वंहि प्राणाः शरीरे ।

बाहुते तुमि मा शक्ति,

हृदये तुमि मा भक्ति,

तोमारई प्रतिमा गड़ि

मंदिरे-मंदिरे ।

त्वंहि दुर्गा दश प्रहरण-धारिणी

कमला कमल-दल-विहारिणी,

वाणी-विद्या-दायिनी

नमामि त्वां

नमामि कमलां अमलां अतुलां,

सुजलां सुफलां मातरम् ,

वंदेमातरम्

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां

धरणीं भरणीं मातरम् ।

वंदेमातरम् ।

❀ झंडा अभिवादन ❀

झंडा ऊँचा रहे हमारा।
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

सदा शक्ति बरसानेवाला,
प्रेम-सुधा सरसानेवाला,
वीरों को हरषानेवाला,
मातृभूमि का तन-मन सारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

स्वतन्त्रता के भीषण रण में,
लखकर जोश बढ़े क्षण-क्षण में,
काँपे शत्रु देखकर मन में,
मिट जाये भय, संकट सारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

इस झंडे के नीचे निर्भय,
लें स्वराज्य यह अविचल निश्चय,
बोलो भारतमाता की जय,
स्वतन्त्रता ही ध्येय हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

आओ प्यारे! वीरो !! आओ !!!
देश जाति पर बलि-बलि जाओ,
एक साथ सब मिल कर गाओ,
प्यारा भारत देश हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

इसकी शान न जाने पावे,
चाहे जान भले ही जावे,
विश्व-विजय करके दिखलावे,
तब होवे प्रण-पूर्ण हमारा,
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

१

काँग्रेस का जन्म

पूर्व रूप

भारतवर्ष के राष्ट्रीय जागरण का इतिहास वस्तुतः १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-संग्राम के बाद से प्रारम्भ होता है। उससे पूर्व देश में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन था। कई सौ वर्षों तक भारत की व्यापारिक एवं राजनैतिक प्रगति उसी के संकेतों पर अवलम्बित रही। अपने कार्य-काल में उसने भारत के कई मुख्य-मुख्य भागों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। पहले वह भारत में केवल व्यापार के दृष्टिकोण से ही आई थी। बाद में अपनी नीतिमत्ता एवं कुटिलता के कारण वह एक व्यापारी से शासक बन गई। उसकी इस शासनात्मक कार्य-प्रणाली से असन्तुष्ट होकर ही १८५७ में देश के निवासियों ने विद्रोह किया था। उस विद्रोह का पतन तो अवश्य हुआ, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने यह अनुभव किया कि देश में अशान्ति है और जब तक उसे शान्त न किया जायगा तब तक शासन स्थायी नहीं हो सकता। अतएव पहले तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से भारत का शासन-सूत्र ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले लिया; फिर उसने इस बात का प्रयत्न भी किया कि शासन-व्यवस्था में ऐसा सुधार किया जाय जिससे शासन-तन्त्र में जनता के कुछ प्रतिनिधि भी सम्मिलित हों, परन्तु मि० ग्लैडस्टन आदि के विरोध के कारण ऐसा न हो सका और भारत का शासन-सूत्र सीधा [illegible] ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथों में आ गया। फिर भी [illegible] ने एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने भारत-वासियों की धार्मिक भावना की रक्षा की बात कही। इससे जनता में

थोड़ी शान्ति जरूर हुई; फिर भी अशान्ति के वास्तविक कारण दूर न हुए।

उस समय तक जो शासन-व्यवस्था थी उसमें वायसराय की एक कौंसिल थी जिसमें केवल मनोनीत सदस्य ही रह सकते थे। उसमें जनता के प्रतिनिधियों को कोई स्थान न था। यह बात खटकने वाली थी और जनता इसके विरुद्ध आन्दोलन कर रही थी। अतः १८६१ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इण्डिया कौंसिल एक्ट पास किया। इस क़ानून के अनुसार भी कोई खास भलाई तो नहीं हुई; परन्तु वायसराय की कौंसिल के सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई और यह निर्णय किया गया कि उसमें आधी संख्या ग़ैरसरकारी सदस्यों की होनी चाहिए। इस क़ानून के अनुसार गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वे आवश्यकतानुसार आर्डीनेन्स जारी कर सकते हैं। इससे जनता में असन्तोष और बढ़ा और वह तब और भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया जब कि १८७८ में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' पास किया गया। इस 'प्रेस एक्ट' के अनुसार देश की विविध प्रान्तीय भाषाओं में निकलने वाले पत्रों पर अनेक प्रकार के नियन्त्रण लगाये गए। इस आर्डीनेन्स के कारण 'अमृत बाज़ार पत्रिका' के संचालक को अपना पत्र बंगला छोड़कर अंग्रेज़ी भाषा में निकालना पड़ा था। इससे भी अशान्ति की वृद्धि हुई। फिर भी यह अशान्ति भीतर ही भीतर रही; देश में इसका कोई प्रकट रूप सामने नहीं आया।

इलबर्ट बिल

जब 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' बना था; तभी अफ़ग़ान-युद्ध हुआ। यह समय लार्ड लिटन के प्रतिगामी शासन का था। १८८२ में व्यवस्थापिका सभा में 'इलबर्ट बिल' पेश हुआ। इस बिल के साथ स्थानिक स्वराज्य का प्रारम्भ करके नये युग का श्रीगणेश किया गया था। 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' को रद्द करके देश की मनोवृत्ति को दूसरी ओर झुका दिया गया। यह बिल भारत सरकार के तत्कालीन लॉ मेम्बर मि०

इलबर्ट ने उपस्थित किया था। इस बिल में कहा गया था कि सब फर्स्ट क्लास भारतीय मजिस्ट्रेट यूरोपियनों का मुक़दमा सुन सकते हैं। इस बिल के प्रस्तुत होने से पूर्व केवल कुछ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट ही यूरोपियन अभियुक्तों का मामला सुन सकते थे, सब नहीं। यह बिल इसी भेद-भाव को मिटाने के लिए पेश किया गया था। इससे यूरोपियनों में बड़ा असन्तोष फैला। उन्होंने बड़ा ज़बर्दस्त आन्दोलन खड़ा कर दिया। यहाँ तक कि कुछ लोगों ने तो गवर्नमेण्ट हाउस के मन्त्रियों को मिलाकर वायसराय को जहाज़ पर बिठाकर इंग्लैंड भेजने की एक साज़िश ही कर डाली। इस साज़िश में कलकत्ते के कई लोगों का हाथ था; जिन्होंने यह सङ्कल्प कर लिया था कि यदि सरकार ने इस बिल को आगे बढ़ाया तो वे इस साज़िश को कामयाब बनाकर छोड़ेंगे। इस साज़िश और आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि इस बिल में परिवर्त्तन हो गया। अन्त में यह सिद्धान्त भर रह गया कि जो मजिस्ट्रेट यूरोपियनों का मामला करें उनके सामने साधारण से मामले पर भी अभियुक्त यह माँग पेश कर सकेगा कि 'जूरी' बैठाली जाय और 'जूरी' में कम से कम आधी संख्या यूरोपियनों या अमेरिकनों की होगी। इस प्रकार गोरे-काले का भेद हटा देने का उद्देश्य इलबर्ट बिल में था वह फिर खटाई में पड़ गया। इस बिल के सम्बन्ध में गोरे लोगों ने जो आन्दोलन किया, उससे भारतीय जनता जाग गई और वह गहरी नींद से अंगड़ाई लेकर उठ बैठी।

कांग्रेस का जन्म

इलबर्ट बिल की असफलता ने भारतीय जनता में स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का महत्त्व स्थापित किया। इस बीच में भारतीय जनता में कुछ शिक्षा का प्रचार भी हो चुका था और उसने 'इलबर्ट बिल' के विरोध में यह भी देखा कि यदि किसी काम के लिए संगठित रूप से आन्दोलन किया जाय तो उसका कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसलिए भारतीयों ने अपने राष्ट्रीय अधिकारों को प्राप्त करने के लिए

आन्दोलन करने के अभिप्राय से एक संस्था स्थापित करने का विचार किया। इस विचार का अधिकारियों ने भी स्वागत किया और यूरोपियनों ने भी साथ दिया। हो सकता है कि इससे उनका यह विचार रहा हो कि इस प्रकार की सभाओं में जो वाद-विवाद होंगे, जो प्रस्ताव आदि पास होंगे उनसे जनता की विचार-धारा का पता लगेगा और उसी के अनुसार शासन-व्यवस्था में सुधार करने की सुविधा होगी। यह भी हो सकता है कि इस प्रकार सहयोग प्रदान से वे यह सोचते रहे हों कि कांग्रेस के नेताओं में अपने आदमी रहने से उनमें नियन्त्रण रहेगा। देश में फैली सारी अशान्ति को दूर करने के लिए आन्दोलन करने वाली संस्था स्थापित करने का विचार सर्व प्रथम मि० ह्यूम के दिमाग़ में आया। उन्होंने हिन्दुस्तानियों की एक राष्ट्रीय सभा स्थापित करने के उद्देश्य से कलकत्ता विश्व विद्यालय के स्नातकों के नाम एक अत्यन्त मार्मिक हृदय-स्पर्शी पत्र लिखा। इस पत्र को लिखने की महत्त्वपूर्ण एवं स्मरणीय तिथि १ मार्च १८८३ थी। मि० ह्यूम ने अपने उस पत्र में ५० ऐसे व्यक्तियों की माँग की थी जो भले, सच्चे, परोपकारी, आत्म-संयमी व नैतिक साहस रखने वाले हों। उन्होंने लिखा था—"यदि केवल ५० भले और सच्चे आदमी इस संस्था को संचालन करने के निमित्त मिल जायँ तो वह स्थापित की जा सकती है और आगे का काम सुगमता से चल सकता है।" सभा के आदर्श का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा—"सभा का विधान प्रजा-सत्तात्मक हो, सभा के लोग व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से सर्वथा रहित हों और उनका यह सिद्धान्त बचन हो कि जो तुममें सबसे बड़ा है उसी को तुम्हारा सेवक होने दो।" पत्र का अन्तिम अंश अत्यन्त मननीय है। उन्होंने उसमें लिखा था—"यदि आप अपना सुख-चैन नहीं छोड़ सकते तो कम-से-कम फिलहाल हमारी प्रगति की सारी आशा व्यर्थ है और यह कहना होगा कि हिन्दुस्तान सचमुच वर्त्तमान सरकार से उत्तम शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है।"

कांग्रेस के जन्म का विस्तृत विवरण देने से पूर्व हम उसकी स्थापना

से पूर्व की देश की जागृति का परिचय करा देना भी उपयुक्त समझते हैं। जिन संस्थाओं ने भारतीय नागरिकों के अधिकारों की रक्षा में थोड़ा-सा भी भाग लिया उनमें सर्व प्रथम 'ब्रिटिश इन्डियन एशोसियेशन' का नाम आता है। इस संस्था में श्री डा० राजेन्द्रलाल मित्र और रामगोपाल घोष जैसे व्यक्ति बीसों साल तक काम करते रहे। इस एशोसियेशन ने लगभग ५० वर्ष तक देश की प्रशंसनीय सेवा की। बम्बई की एक सार्वजनिक संस्था 'बाम्बे एशोसियेशन' का नाम भी इस दिशा में उल्लेखनीय है। उसके प्रमुख नेता सर मंगलदास नाथूभाई और श्री नौरोजी फरूद जी थे। स्व० दादाभाई नौरोजी और जगन्नाथ शंकर सेट ने उसकी स्थापना की थी। इसी प्रकार की संस्थाएं मद्रास और महाराष्ट्र में थीं। बङ्गाल में १८७३ में इण्डियन एशोसियेशन की स्थापना हुई। इसके प्रमुख सञ्चालकों में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और श्री आनन्दमोहन वसु थे। यह उल्लेखनीय बात है कि यद्यपि अभी तक कांग्रेस की स्थापना नहीं हुई थी तथापि अधिकारियों पर इन संस्थाओं का पर्याप्त प्रभाव होने लगा था।

जब 'इलबर्ट बिल' के वापिस लिये जाने से देश में अशान्ति और विरोध फैला तो भारत के तत्कालीन देश-सेवकों ने कलकत्ता के अलबर्ट हॉल में एक राजनैतिक परिषद् का आयोजन किया। जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्दमोहन वसु दोनों उपस्थित थे। इस सभा में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने प्रारम्भिक भाषण में भारत की स्वाधीनता पर जोर दिया था। इस परिषद् का अधिवेशन तीन दिन हुआ था। तीनों दिन उत्साह और लगन का अथाह सागर हिलोरें लेता दिखलाई देता था। इसके दूसरे ही वर्ष कलकत्ते में एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् हुई; जिससे भारतीय जनता के स्वत्वों की रक्षा करने के निमित्त किसी उत्तरदायी संस्था की स्थापना करने की प्रेरणा मिली। कलकत्ते की इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के बाद दिसम्बर १८८४ में मद्रास में होने वाले 'थियोसोफिकल कन्वेंशन' का नाम भी आता है। वहाँ पर १७ व्यक्तियों की एक समिति में कांग्रेस की स्थापना की रूप-रेखा

निर्धारित की गई थी। इस रूप-रेखा को कार्यान्वित करने की ओर सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ ए० ओ० ह्यूम ने क़दम बढ़ाया और २३ मार्च १८८५ को इसके सम्बन्ध में पहला नोटिस जारी किया गया।

मि० ह्यूम की इतनी सहानुभूति, दिलचस्पी और कार्य-तत्परता से ही स्वाधीनता के सोये हुए भावों की कल्पना को प्राण और प्रेरणा मिली। जिसने अब एक विशाल और दृढ़ रूप धारण कर लिया। आपनी इस कार्य-पटुता और उदारता के कारण ही मि० ह्यूम कांग्रेस के जन्मदाता कहे जाने लगे। इस प्रकार कांग्रेस का जन्म हुआ और वह अपने राजनीतिक अधिकारों की चर्चा करने लगी। ज्यों-ज्यों कांग्रेस का काम बढ़ने लगा त्यों-त्यों सरकार का सहयोग और यूरोपियनों की दिलचस्पी घटती गई। शायद उन्होंने देखा कि भारतीय नेता अपनी मांगों की पूर्ति के निमित्त दृढ़तापूर्वक जुटे रहना चाहते हैं, वे उसमें कोई समझौता स्वीकार नहीं कर सकते। अतः दो ही तीन वर्ष बाद सरकार और यूरोपियन दोनों का रुख़ बदला और तब से अब तक वह बदलता ही आता है।

पहला अधिवेशन

२८ दिसम्बर १८८५ को दिन के बारह बजे गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालिज बम्बई में कॉंग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। ७२ व्यक्तियों की एक टोली बम्बई की विशाल नगरी में भारत के भाग्य का फ़ैसला करने के लिए बैठी थी। अधिवेशन में सबसे पहली आवाज़ सुनाई पड़ी ह्यूम साहब की, माननीय एस॰सुब्रह्मण्य ऐयर की और माननीय काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग की। ह्यूम साहब ने श्री उमेशचन्द्र बनर्जी के सभापतित्व का प्रस्ताव उपस्थित किया था। [illegible] [illegible]। उक्त ७२ व्यक्तियों के अतिरिक्त [illegible] कर होने के कारण अधिवेशन में बाज़ाब्ता भाग नहीं ले सकते थे; किन्तु सहानुभूति उनकी पूर्णतया कॉंग्रेस के ही साथ थी। सभापति के पद से भाषण करते हुए श्री उमेश-चन्द्र बनर्जी ने कॉंग्रेस का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया—

(अ) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश के हित के लिये लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्ठता और मित्रता बढ़ाना।

(आ) समस्त देशवासियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री व्यवहार के द्वारा वंश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी तमाम पूर्व-दूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की उन तमाम भावनाओं का, जो लार्ड रिपन के शासन काल में उद्भूत हुई, पोषण और परिवर्द्धन करना।

(इ) महत्त्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद जो परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(ई) उन तरीक़ों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देश-हित के कार्य करें।

इस अधिवेशन में कुल नौ प्रस्ताव पास हुए थे। पहले प्रस्ताव में तत्कालीन भारतीय शासन के लिए एक कमीशन की माँग की गई थी। दूसरे में भारत-सचिव की कौन्सिल को उठा देने की माँग थी। तीसरे प्रस्ताव द्वारा लेजिस्लेटिव कौंसिलों के सुधार, चौथे में अन्याय विषयों की जाँच और पाँचवें में सैनिक-खर्च में वृद्धि की कैफियत की माँग की थी। छटे में बर्मा के मिलाने का विरोध, सातवें में इन प्रस्तावों की प्रतियों के राजनीतिक संस्थाओं के पास भेजने, आठवें में इस संस्था का प्रचार और नवें में कलकत्ता में आगामी अधिवेशन होने की बात थी। इस अधिवेशन में श्री उमेशचन्द्र बनर्जी ने कहा था "भारतवर्ष के इतिहास में कुछ जमातों के प्रतिनिधियों की ऐसी महत्त्वपूर्ण बैठक कभी नहीं हुई थी।"

२

विकास की ओर

दूसरा अधिवेशन

कॉंग्रेस की स्थापना और उसके पहले अधिवेशन में स्वीकृत हुए प्रस्तावों से देश की शिक्षित जनता में पर्याप्त जाग्रति हो गई और सभी ने इसके सदुद्देश्यों से सहमति प्रकट की। परिणाम स्वरूप इसका कार्य-क्षेत्र बढ़ने लगा। बम्बई के अधिवेशन के निर्णयानुसार कॉंग्रेस का दूसरा अधिवेशन २८ दिसम्बर १८८६ को कलकत्ता में हुआ। दादाभाई नौरोजी इसके सभापति थे। इस अधिवेशन में ४४० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस अधिवेशन में पहले-पहल समस्त भारत में प्रतिनिधिक संस्थाओं की माँग की गई थी। इस रुख को देखकर भारत-सरकार की चिन्ता कुछ बढ़ने लगी। कुछ अधिकारी खुल्लम-खुल्ला इसकी शिकायत करने लगे और धमकियाँ देने लगे। १८८८ में लार्ड डफरिन ने ब्रिटिश सरकार से गुप्त मन्त्रणा की कि यद्यपि बाहर से इस संस्था का विरोध किया जा रहा है तथापि इसकी कुल माँगों को शीघ्र ही स्वीकार कर लेना चाहिए। परिणाम स्वरूप कौंसिलों में सुधार की माँग मन्जूर कर ली गई और इस संस्था के सदस्यगण कुछ ठोस कार्य करने के बजाय कौंसिलों के चुनाव लड़ने लगे। लार्ड डफरिन की नीति काम कर गई। देश में बढ़ता हुआ आन्दोलन का प्रबल ज्वार कुछ दिनों के लिये शान्त हो गया और लार्ड लैंसडाउन तथा एलगिन के शासन-काल में यह संस्था सोडावाटर की बोतल बन गई।

कॉंग्रेस के जन्म-काल से जो आन्दोलन हुआ उसके परिणाम स्वरूप देश के शिक्षित समुदाय का ध्यान इसके कार्यों की ओर आकर्षित हुआ।

उस समय की काँग्रेस बहुत ही नरम किस्म की काँग्रेस थी और वह जो कुछ चाहती थी, वह भी बहुत अधिक न था। अतः १८६२ में पार्लमेंट में नया इण्डिया कौंसिल एक्ट पास किया गया, जिसके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं, लोकल बोर्डों आदि में जनता के प्रतिनिधियों के जाने की व्यवस्था हुई, यद्यपि इन प्रतिनिधियों की संख्या किसी भी दशा में ४० प्रतिशत से अधिक नहीं रखी गई। शायद सरकार को यह आशा थी कि इस प्रकार थोड़ा सा सुधार कर देने से आन्दोलन शान्त हो जायगा और काँग्रेस इससे ही सन्तुष्ट हो जायगी; परन्तु इससे विपरीत ही कांग्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन को निर्बाध गति से बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया।

बङ्ग-भङ्ग

इसी बीच लार्ड कर्ज़न भारत के वायसराय होकर आये। उन्होंने इस बेरहमी से शासन करना प्रारम्भ किया कि भारतीयों के हृदय में सुप्त असन्तोष का ज्वालामुखी फट उठा और उन्होंने और भी प्रबल वेग से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। सारे देश में एक सनसनी फैल गई और सभी लोगों का ध्यान इस संस्था को बलवान बनाने की ओर गया। लोगों की यह धारणा बन गई कि केवल प्रस्ताव पास कर देने से ही काम नहीं चलेगा; परिणाम स्वरूप सबने यह निर्णय किया कि ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार किया जाय। प्रस्ताव तो पास हो गया, किन्तु उसको कार्य रूप में परिणत करने में नरम दली हिचकने लगे।

इसी बीच काँग्रेस में कई नई शक्तियों का समावेश हो गया था। विभिन्न प्रान्तों में काफी राष्ट्रीय जाग्रति हो गई थी। गोपाल कृष्ण गोखले के बाद महाराष्ट्र में लोकमान्य बाल गङ्गाधर 'तिलक' पंजाब में लाला लाजपतराय और बङ्गाल में बिपिन चन्द्रपाल, 'लाल बाल-पाल' नाम से प्रसिद्ध हो गए थे। इन्हें सरकारी दमन-चक्र ने दबाने की जो कोशिशें कीं, उससे देश में उलटी और भी अधिक जाग्रति पैदा कर दी। लार्ड-कर्ज़न की दमनीति ने देश में अनशान्ति पैदा करदी। बङ्ग-भंग के

सिलसिले में काँग्रेस का सहयोग होने या न होने के प्रश्न पर हमारे नेताओं में भारी विवाद खड़ा हो गया और परिणाम स्वरूप काशी में १९०८ में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव पास तो हो गया; परन्तु काँग्रेस का सहयोग उसे पूर्णतया न मिल सका। बंग-भंग के आन्दोलन ने हमारी राजनीति को युद्ध-क्षेत्र में ला खड़ा किया। जनता के प्रबल विरोध के बावजूद भी जब १६ अक्टूबर १९०५ को जनमत की अवहेलना करके बंग-भंग कर दिया गया। इसके अनुसार पूर्वी बंगाल को आसाम से मिला कर एक अलग प्रान्त बना देने का निश्चय किया गया था। इसके विरोध में अनेक प्रतिवाद सभायें हुईं और सरकार के इस कार्य के प्रति तीव्र रोष प्रकट किया गया। परिणाम स्वरूप काशी में सन् १९०८ में उक्त विदेशी माल के बहिष्कार करने के सम्बन्ध में निर्णय किया गया। यह आन्दोलन खूब बढ़ा, कई स्वदेशी मिलें खुलीं। लाखों रुपये इस आन्दोलन के लिए एकत्रित किये गये, स्थान-स्थान पर सभाओं का आयोजन किया गया और स्वदेशी की प्रतिज्ञायें कराई गईं। नवयुवकों, छात्रों आदि में देश-प्रेम की लहरें हिलोरें मारने लगीं। उधर अधिकारियों की चिन्तायें बढ़ीं और उन्होंने दूनी तत्परता से दमन शुरू किया। दमन-आन्दोलन के इस संघर्ष ने कुछ नवयुवकों को इतना उत्तेजित कर दिया कि वे आवेश में आकर आतंक-वादी मार्ग के पथिक बन गये। इसी बीच बंगाल के प्रतिष्ठित नेता अश्विनीकुमार दत्त पर राज-द्रोह का मामला चला और १९०६ में प्रान्तीय राजनीतिक कान्फ्रेंस रोक दी गई। दमनकारियों ने स्थिति को और भी गम्भीर बना दिया। इन्हीं दिनों लार्ड मिण्टो पर अहमदाबाद में बम फेंका गया। इस प्रकार यह आन्दोलन दिन-प्रति दिन उग्र रूप धारण करता चला गया।

ज़बान का जादू

काँग्रेस का १८८५ से लेकर १९०५ तक का इतिहास, प्रस्ताव, प्रार्थना और प्रवचनों का इतिहास है। इस काल के भीतर काँग्रेस की आँख इस बात पर नहीं थी कि अंग्रेजी शासन भारत में क्यों जम गया

है, देश में इतने दुर्भिक्ष क्यों पड़ते जा रहे हैं तथा देश का धन इस प्रकार विदेश की ओर विद्युद्वेग से क्यों जा रहा है। न उसे इसी बात का ध्यान था कि कलकत्ता का चीफ़ जस्टिस क्यों मार डाला गया अथवा लार्ड मेयो की अण्डमान में क्यों हत्या हो गई। इन बीस वर्षों तक तो वह केवल प्रार्थिनी की अवस्था में ही थी। सिविल सर्विस में भारत-वासियों को जगह दिलाने के लिये, प्रान्तीय कौंसिलों में निर्वाचित हिन्दुस्तानियों का लाने के लिए और ऊँची नौकरियों में हिन्दुस्तानियों को भरने के लिए ही वह प्रयत्नशील थी। राजाराममोहन राय या स्वामी दयानन्द के मुख से धर्म के आवरण में जो राष्ट्रीयता गुंजित एवं ध्वनित हो रही थी उस की अभिव्यक्ति भी कॉंग्रेस से भली प्रकार नहीं हो पाती थी। कॉंग्रेस के नायकों को शायद उन दिनों यह सूझता भी नहीं था कि निशस्त्र भारत को, अंग्रेजों के खिलाफ़ बग़ावत करने को कौन कहे।

१८८६ में दादाभाई नौरोजी ने कहा था कि "अभी हम केवल बोलने की अवस्था में हैं।" लेकिन कदाचित् यह बोलना भी निर्भीक नहीं था। इस बोली के पीछे सदैव यह भय लगा रहता था कि कहीं मुँह से कोई कड़ी बात न निकल जाय। इतना ही नहीं, प्रत्युत कॉंग्रेस की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था कि उसके सभापति व सदस्य सभी नरम विचारवाले हों। लेकिन कॉंग्रेस के बाहर जो राष्ट्रीयता पनप रही थी, उसका प्रभाव, शनैः शनैः कॉंग्रेस पर पड़ रहा था। धार्मिक नेताओं ने लोगों में आत्म-सम्मान की जो भावना कूट-कूट कर भर दी थी वह धीरे-धीरे क्रिया के रूप में अपनी परिणति खोज रही थी। इसका प्रमाण इस रूप में मिला कि शीघ्र ही कॉंग्रेस ने भारतीयों में कुछ उग्रता की भावना भरनी प्रारम्भ करदी और नरम विचारवाले व्यक्तियों को अलविदा की। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्त होते न होते कॉंग्रेस को अपने 'प्रार्थना' प्रस्तावों की निःसारता का सार मालूम हो गया था और देश की क्षुब्ध भावना का प्रतिनिधित्व करते हुए दादाभाई नौरोजी ने कॉंग्रेस के मंच से इस बात की खुली घोषणा

कर दी कि "जानबुल जीभ नहीं, प्रत्युत दाँतों की भाषा को समझता है।"

जीभ और दाँत का संघर्ष

यह मानी हुई बात है कि दाँत जीभ से कहीं अधिक कारगर होते हैं; लेकिन यहाँ दाँत का प्रयोग करता कौन ? राष्ट्रीयता के क्षोभ ने जिनके मुख में दाँत पैदा कर दिये थे, वे काँग्रेस से बाहर थे। काँग्रेस के भीतर केवल उन्हीं लोगों का आधिपत्य था जिनकी जीभ बहुत लम्बी और दाँत बिलकुल छोटे थे, अथवा यों कहना चाहिए कि दाँत थे ही नहीं। सन् १६०६ के बंग-भंग के आन्दोलन ने यह भी बता दिया कि हिन्दुस्तान में केवल वे ही लोग नहीं हैं, जो बोलना जानते हैं, प्रत्युत वे भी लोग हैं जो काटने में भी दक्ष हैं।

लोकमान्य तिलक इन काटने वालों के दल के मसीहा बनकर प्रकट हुए। लेकिन स्मरण रहे कि उनके पूर्व ही नौरोजी दाँत की सार्थकता को स्वीकार कर चुके थे और उन्होंने बंग-भंग के सम्बन्ध में जीभ और दाँत को एकाकार होते देखकर कहा था कि "बंग-भंग हुकूमत और जनता की जोर-आजमाई का नजारा है। हुकूमत कहती है कि मैं तलवार के बल से लोगों को भूखा मारकर, उन्हें महामारियों के मुख में झोंककर और उनके धन को चूसकर जीने के लिये सर्वथा सन्नद्ध हूँ और जनता कहती है कि यह ग़ैर मुमकिन है।" नौरोजी ने भगवान को धन्यवाद दिया कि आख़िर वे भारतीय स्वाधीनता का जन्म देखने को जीवित रहे।

सभाबन्दी कानून व प्रेस एक्ट

बंग-भंग के आन्दोलन के कारण जनता में जो उत्तेजना फैल गई थी वह दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। राष्ट्रीय जाग्रति के साथ-साथ सरकार का दमन भी बढ़ता गया। इसी समय बंगाल की राजनीति ने पलटा खाया। विपिन चन्द्रपाल के बाद बङ्गाल का एक तरुण और उग्र राजनीतिज्ञ आया। अरविन्द घोष उनका नाम है। अरविन्द बाबू बरसों

तक भारत की राजनीति में प्रबल प्रेरणा का कार्य करते रहे। उनके काँग्रेस में आने से राष्ट्रीय शिक्षा-आन्दोलन बहुत आगे बढ़ गया था। बङ्गाल का तरुणवर्ग उग्र आतंकवाद में विश्वास करने लगा था। परिणाम स्वरूप सरकार ने 'गुरखा सेना' और यदि आवश्यक हो तो ख़ून ख़राबी को आदर्श बनाकर मनमाने अत्याचार किये। १६०८ में स्थिति चरम सीमा तक पहुँच गई। इन अत्याचारों के विरुद्ध जब बङ्गाल के पत्रों ने आवाज़ उठाई तो उन पर मुकदमे चलाये गए और 'युगान्तर', 'सन्ध्या' तथा 'बन्देमातरम्' आदि नए पत्रों के सम्पादकों को जेल में ठूंस दिया गया। यह स्थिति बङ्गाल में ही नहीं, प्रत्युत समस्त देश में हो गई। महाराष्ट्र में १३ जुलाई १६०८ को लोकमान्य तिलक गिरफ़्तार किये गए और उन्हें राज-द्रोह के अभियोग में उन्हें छः साल के देश निकाले की सजा मिली। 'राज-द्रोह' के अभियोग में उन दिनों पाँच साल तक की सज़ा देना मामूली बात थी। इस घटना ने शान्ति को दूर कर दिया और उसकी जगह जनता ने बम व पिस्तौल को अपनाया। परिणाम स्वरूप जनता के बढ़ते हुए जोश का दमन करने के लिए सरकार ने 'राजद्रोही सभाबन्दी कानून' और 'प्रेस एक्ट' नाम के दो कानून पास किये और दो वर्ष बाद 'क्रिमिनल लॉ अमैंडमेंट एक्ट' भी बन गया। सभाबन्दी बिल पर बहस करते हुए उन दिनों के नरम दली, राजनीति के सूत्रधार श्री गोखले ने अशान्ति के बढ़ने की आशंका प्रकट करते हुए सरकार को चेतावनी दी थी कि "युवक हाथ से निकले जा रहे हैं और यदि हम उन्हें वश में न रख सकें तो हमें दोष न देना।"

मार्ले-मिण्टो शासन-सुधार

जहाँ एक ओर आन्दोलन इस रूप में चल रहा था, वहीं दूसरी ओर माननीय गोपालकृष्ण गोखले जैसे प्रमुख काँग्रेस-नेता ब्रिटिश राजनीतिज्ञों पर वैधानिक प्रभाव डाल रहे थे। देश में रह कर उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड मिण्टो से शासन-सुधार की आवश्यकता को समझाया और यही विलायत जाकर भारत मन्त्री लार्ड मार्ले को भी

समझाया। दोनों जगह प्रयत्न करने का परिणाम यह हुआ कि १९०९ में "मार्ले-मिण्टो शासन-सुधार" देश पर लागू किये गये। इस शासन-योजना की विशेष बातें यह थीं :—

१—इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल (बड़े लाट की कौन्सिल) में गवर्नर जनरल तथा उनकी शासन-सभा के सदस्यों के अतिरिक्त और ६० सदस्य होंगे।

२—पंजाब तथा बर्मा की प्रान्तीय कौन्सिलों के सदस्यों की संख्या ३० तथा

३—अन्य प्रांतीय कौंसिलों के सदस्यों की संख्या ५० निर्धारित की गई।

४—प्रत्येक कौन्सिल में सरकारी कर्मचारी, सरकारी सदस्य, निर्वाचित सदस्य, इस प्रकार तीन तरह के सदस्य रक्खे गये।

५—इन सब में खासकर इम्पीरियल कौंसिल के सम्बन्ध में यह सावधानी रखी गई कि किसी दशा में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत न होने पाए।

नरम दल और गरम दल

ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति के कारण कांग्रेस में दो दल होगये। एक आतंककारी विचार-धारा और दूसरी वैधानिक विचार-धारा के व्यक्ति कांग्रेस में उन दिनों काम कर रहे थे। परन्तु चूँकि आतंकवादी विचारधारा असामयिक, भयानक और आपत्तिजनक थी तथा परिस्थितियों के भी प्रतिकूल थी, इसलिए वह विचार-धारा सार्वजनिक रूप धारण नहीं कर सकी। दूसरी ही विचार-धारा जन साधारण तक पहुँची। इस विचार-धारा में भी 'नरम-दल' और 'गरमदल' नाम के दो दल होगये थे। पहला दल ब्रिटिश सरकार से अनुनय-विनय करके अपने अधिकार प्राप्त करने की नीति पर विश्वास करता था और दूसरा दल आन्दोलन को मजबूत और सुदृढ़ बनाकर काम करने में विश्वास करता था। बंग-भंग के आन्दोलन के कारण बंगाल में जागृति उत्पन्न होगई थी। वहाँ की उग्र तरुणाई गरम-दल की नीति को अमल

में लाने के लिए छटपटा रही थी। उसने प्रस्ताव किया कि लोकमान्य तिलक इस अधिवेशन के सभापति बनाये जायँ। बस क्या था। तात्कालिक दक्षिण पक्षियों के कान खड़े हो गये और उन्होंने साजिश शुरू की कि लोकमान्य तिलक सभापति न होने पायँ। दूसरा कोई उस समय था नहीं जो उनके मुक़ाबले में टिक सकता। अतः दक्षिण पक्षियों ने दादाभाई नौरोजी को सभापति होने के लिये राजी कर लिया। इस चाल से उनकी तात्कालिक विजय हो गई। यह अधिवेशन १९०६ में कलकत्ता में हुआ था। दक्षिण पक्षियों की इस कूटनीतिज्ञता का परिणाम बुरा निकला। इन लोगों ने सोचा था कि दादाभाई नौरोजी नरमदली नीति का अवलम्बन लेंगे; किन्तु उनकी यह धारणा ग़लत ठहरी। उन्होंने तात्कालिक उग्रपन्थियों की ही नीति कबूल की और कांग्रेस का ध्येय 'स्वराज्य' होगया जैसा कि उपनिवेशों में प्रचलित था।

तिलक का नेतृत्व

इसके उपरान्त काँग्रेस का नेतृत्व लोकमान्य तिलक के हाथों में पूर्णतया आ गया। उन्होंने पिछली नरम नीति की आलोचना करते हुए कहा था कि "पुराने और नये दलों में क्या भेद है, इस बात को लोग आसानी से समझ सकते हैं। नये और पुराने, दोनों दलों पर यह रहस्य भली भाँति प्रकट हो गया है कि सरकार से प्रार्थना करना पत्थर के सामने रोने के समान है। फिर भी पुराना दल प्रार्थना करने पर अड़ा हुआ है। लेकिन नवीन दल देश को विश्वास दिलाना चाहता है कि तुम्हारा भविष्य तुम्हारे हाथ में है। अगर तुममें यह ताकत नहीं है कि ज़ुल्मों की बाढ़ का मज़बूती से मुक़ाबिला कर सको तो तुममें इतनी तो ताक़त होनी चाहिए कि उन सुखों का मोह छोड़ दो जो इन ज़ुल्मों और ज्यादतियों को प्रश्रय देते हैं और उन्हें सम्भव बनाते हैं। यह शक्ति बहिष्कार की शक्ति है। यह शक्ति असहयोग ही शक्ति है।

"हम अंग्रेजों को कर वसूल करने तथा शान्ति-व्यवस्था को क़ायम रखने में मदद देना छोड़ दें। हिन्दुस्तान से बाहर जाकर हम धन और

जन से उनकी सहायता न करें। हम उनके न्यायालयों को जारी रखने में सहयोग न दें। जब समय आयगा तो हम अपने न्यायालयों का निर्माण स्वयं ही कर लेंगे, लेकिन इस वर्तमान सरकार को चलाने के लिए किसी भी प्रकार का टैक्स नहीं देंगे। यदि तुममें इतना करने की हिम्मत है तो मैं वायदा करता हूँ कि तुम कल ही स्वाधीन हो जाओगे।" दाँत ने हलके-हलके किट-किटाना शुरू कर दिया और असहयोग का कार्य-क्रम हवा में आकर मँडराने लगा।

लोकमान्य तिलक ने जो कुछ भी कहा था, वह स्पष्ट ही उन सब बातों से कहीं अधिक प्रभावशाली था, जो बातें पुराने नेताओं के मुँह से जनता सुनती चली आ रही थी। अपने उग्र विचारों के कारण तिलक उत्पीड़ित किये जा रहे थे। उनके अनुयायियों को कठोर कारावास और मौत की सजायें दी जा रही थी। काँग्रेस के पुराने नेता, जो अंग्रेजी हुकूमत से निजी लाभ में थे, जो प्रस्तावों और अर्जियों से देश की अवस्था को सुधारने के काम को ही सर्वोत्तम देश-सेवा समझते थे; तिलक के इस रुख से घबराये। काँग्रेस की मैशीनरी सब उन्हीं लोगों के हाथों में थी। तिलक की पार्टी की पार्टी का उस पर कब्जा न था। इसी वातावरण में सूरत में नरम और गरम दलों के बीच बज गई। दाँत के सामने जीभ थर-थर काँपने लगी; लेकिन दाँतों की सत्ता समाप्ति होने का समय अभी दूर था।

एक पार्टी, एक कार्य-क्रम, एक नेता

राजनीतिक संस्थाओं में जब कभी इस प्रकार का संघर्ष उपस्थित होता है तभी अधिकार में रहने वाला दल 'एक पार्टी, एक कार्य-क्रम एवं एक नेता' का नारा लगाने लगता है। सूरत की काँग्रेस के समय भी सर फिरोजशाह मेहता ने यही नारा लगाया और चाहा कि यदि गरम दल वाले लोग उतने से सन्तुष्ट नहीं हैं, जितना काँग्रेस कर रही है, तो यही उचित है कि वे अपनी एक अलग संस्था बना लें। स्पष्ट ही फिरोजशाह मेहता काँग्रेस को उन लोगों तक ही सीमित रखना चाहते

थे, जो लोग शरीफों की तरह सुख-भोग करते हुए राजनीति का बोझ अपने कन्धों पर उठाने को तैयार थे। वे कांग्रेस के स्वाभाविक विकास को रोकने की कोशिश में थे। किन्तु देश का हृदय बहुत दूर तक कांग्रेस के भीतर धड़कने लग गया था और इसके बिना कांग्रेस जी नहीं सकती थी।

अन्तर बढ़ता ही गया

इस घटना के बाद से नरम और गरम दलों में स्वाभाविक अन्तर बढ़ता ही गया। धीरे-धीरे खाई चौड़ी होती गई और कांग्रेस के अन्दर फूट पड़ गई जिसका प्रखरतम प्रदर्शन १९०७ की सूरत कांग्रेस में हुआ। इस अधिवेशन के सभापति थे सर फिरोजशाह मेहता। खुले अधिवेशन में उन पर जूता फेंका गया। इस अवांछनीय परिस्थिति से खिन्न होकर सभापति ने अधिवेशन स्थगित कर दिया। उस समय मालूम तो यह होता था कि इस अधिवेशन में कोई नीति स्थिर नहीं हो सकेगी। परन्तु दूसरे ही दिन नरमदलियों ने एक मसविदा तैयार किया, जिसमें भारत का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य और यह भी वैधानिक तरीकों से घोषित किया गया। नरमदल वालों ने श्री रासबिहारी घोष को सभापति घोषित किया। यह प्रस्ताव तो पास हो गया, परन्तु गरम दल वाले कांग्रेस से हट गये। उनका सहयोग क़रीब-क़रीब बन्द सा हो गया। इस गृह-युद्ध ने सूरत कांग्रेस में जो ऊधम मचाया वह कांग्रेस के इतिहास का एक काला पृष्ठ है। इसके बाद १९१६ में लखनऊ की कांग्रेस में दोनों दल एक हो गये और फिर कांग्रेस एक नीति पर चलने लगी।

मुसलिम लीग

इसी बीच एक और नई बात हुई। मिस्टर जिन्ना भी इसी मतभेद के कारण कांग्रेस से विदा हो गये। देश के मुसलमानों ने कांग्रेस से पृथक् अपना राजनीतिक संगठन किया। इस संस्था का नाम मुसलिम लीग पड़ा। यह संस्था मुख्यतः कांग्रेस का विरोध करने और

साम्प्रदायिक मामलों में केवल मुसलमानों का हित सम्पादन करने के लिए स्थापित हुई। इस प्रकार कांग्रेस को एक ओर अपने अन्दर ही नरम दल और गरम दल की फूट का सामना करना पड़ा और दूसरी ओर मुस्लिम लीग का। फिर भी सब विघ्न-बाधाओं को सहती हुई वह अपने लक्ष्य की ओर बराबर अग्रसर होती गई। यहाँ तक कि अब जब भारत आज़ादी के द्वार पर पहुँच गया है, तब भी मुस्लिम लीग ने रोड़े अटकाने में कमी नहीं की। 'पाकिस्तान' की माँग के रूप में उसने देश के विभाजन की एक विषैली योजना भी देश के सामने खड़ी कर दी है।

दमन-नीति व जागृति

यूरोपीय युद्ध

सूरत-कांग्रेस के बाद मुसलिम-लीग के कांग्रेस से अलग हो जाने की घटना का उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। उसने १६१३ के अपने अधिवेशन में देश के राजनैतिक भविष्य को दो महान् जातियों (हिन्दुओं और मुसलमानों) के मेल, सहयोग तथा सहकार्य पर निर्भर बतलाया। कांग्रेस ने भी उसके इस कथन की प्रशंसा की। इसी बीच जुलाई १६१४ में यूरोपीय युद्ध छिड़ गया; जिसमें ब्रिटिश सरकार भी सम्मिलित हुई। इस युद्ध के अवसर पर लोकमान्य तिलक ने, जो गरम दल के नेता थे, देशवासियों से कहा कि अब स्वतन्त्रता प्राप्त करने का समय आ गया है; परन्तु चूँकि कांग्रेस उस समय नरम दल वालों के प्रभाव में थी, उनकी बात अस्वीकृत हो गई और कांग्रेस ने खुले दिल से ब्रिटिश सरकार की सहायता की। उस समय ब्रिटिश सरकार ने भी भारतवासियों को बड़े-बड़े आश्वासन दिये थे। देश-वासी इस आशा में फूले न समाते थे कि लड़ाई के बन्द हो जाने पर उनकी सेवाओं के बदले भारत-सरकार उन्हें बड़े-बड़े तोहफे देगी। परन्तु उनकी यह आशा निराशा में ही परिणत हुई।

१६१४ की कांग्रेस में स्व-शासन की माँग फिर की गई। कांग्रेस ने उस समय यह प्रस्ताव पास किया "वर्तमान आपत्ति के समय भारत की जनता ने जिस उत्कृष्ट राज-भक्ति का परिचय दिया है उसे देखते हुए कांग्रेस ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना करती है कि वह इस राज-भक्ति को और भी गहरी और स्थिर बनावे।" इस युद्ध में सहायता देने के

कार्य में स्वयं महात्मा गान्धी ने भी प्रयत्न किया था। उन्होंने जगह-जगह घूमकर चन्दा उगाहने एवं सैनिक भर्ती करने का काम किया। तत्कालीन प्रधान मन्त्री लायड जार्ज ने सरे आम घोषणा की कि भारत ने जो अमूल्य सेवायें की हैं, उन्हें ब्रिटिश सरकार भूल नहीं सकती और जिस वक्त शान्ति-सम्मेलन सफलता पूर्वक समाप्त हो जायगा उस वक्त ही भारत की पूर्ण वैधानिक उन्नति के लिए कोशिश शुरू कर दी जायगी।

ऊपर कहा जा चुका है कि कांग्रेस के अन्दर गरम दल और नरम दल नाम के दो दल हो गये थे और कांग्रेस की बागडोर पूर्णतया नरम दल वालों के हाथ में थी। फिर भी गरम दल वालों ने इसके मुक़ाबिले की कोई दूसरी संस्था स्थापित नहीं की। इसका परिणाम यह हुआ कि आपस की फूट के कारण कांग्रेस का काम ढीला पड़ गया। इतना होने पर भी उसकी प्रतिष्ठा ज्यों की त्यों सुरक्षित रही। यह अवस्था १९१६ तक रही। १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस हुई और वहाँ दोनों दल मिल गये। लखनऊ में ही लोकमान्य तिलक ने पहले-पहल 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है' का प्राण-प्रेरक पाठ भारतीयों को पढ़ाया था।

लखनऊ-पैक्ट

इस मेल-मिलाप के अतिरिक्त एक दूसरे मेल-मिलाप के लिए भी लखनऊ-कांग्रेस प्रसिद्ध है और वह मिलाप है मुसलिम लीग तथा कांग्रेस का। लखनऊ में मुसलिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौता हुआ तथा दोनों संस्थाओं ने सम्मिलित रूप से ब्रिटिश सरकार के सामने देश की राजनीतिक माँग पेश की। देश की राजनीतिक चेतना के इतिहास में यह प्रथम और अद्वितीय घटना थी, जब देश भर की सम्मिलित माँग एक साथ एक स्वर में की गई हो। यह समझौता कांग्रेस के इतिहास में 'लखनऊ-पैक्ट' के नाम से विख्यात है। लखनऊ-पैक्ट की मुख्य-मुख्य बातें ये हैं :—

१—प्रान्तीय-व्यवस्थापिका सभाओं की सदस्य-संख्या में ८० प्रति-शत निर्वाचित सदस्य रहें।

२—प्रान्तीय कौन्सिलें प्रान्त के अन्तरंग शासन सम्बन्धी मामलों में स्वतन्त्र रहें।

३—कौन्सिलों के प्रस्ताव का मानना शासकों के लिए अनिवार्य हो।

४—शासन-सभा के सदस्य भारतीय हों और उनका चुनाव कौन्सिल के निर्वाचित भारतीय सदस्य करें।

५—हिन्दू मुसलमानों का पृथक्-पृथक् निर्वाचन हो।

इस समझौते की अन्तिम धारा कांग्रेस के सिद्धान्त के विपरीत थी। जिस पृथक् निर्वाचन का वह सदा विरोध करती आई थी उसी को उसने यहाँ स्वीकार किया। परन्तु अपने सिद्धान्त से इस प्रकार हट जाना कांग्रेस ने केवल इसलिए स्वीकार किया कि ब्रिटिश सरकार के सामने देश की निर्विरोध सर्वसम्मत माँग पेश की जा सके।

होमरूल लीग

उक्त माँग पेश हुई। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इस माँग पर सहानुभूति-पूर्वक विचार नहीं कर रहे थे। साथ ही देश की अन्यान्य राजनीतिक माँगों के लिए भी अपेक्षाकृत अधिक उग्र आन्दोलन की आवश्यकता का अनुभव करके श्रीमती एनी बिसेण्ट और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने 'होमरूल लीग' के नाम से एक दल की स्थापना करके औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्ति के लिए जोरदार आन्दोलन उठाया। इस आन्दोलन में श्रीमती एनी बिसेण्ट ने अपने पत्र 'न्यू इण्डिया' और लोकमान्य तिलक ने अपने 'केसरी' और 'मरहठा' आदि पत्रों के द्वारा खूब आन्दोलन किया। फल स्वरूप इनसे लम्बी-लम्बी जमानतें माँगी गईं और मुक़दमे चलाये गये तथा इन्हें जेल भेजा गया।

१९१७ में यूरोपीय-युद्ध चरम सीमा पर था और इधर भारतवर्ष में जोरदार आन्दोलन भी छिड़ा हुआ था। इस विकट परिस्थिति को देखकर तत्कालीन ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने यह घोषणा की कि सम्राट् की

सरकार इस नीति से काम लेगी कि शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का अधिकाधिक सहयोग हो और साम्राज्य के एक अत्यन्त आवश्यक अंग के रूप में भारत में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की स्थापना के लिए स्वायत्त-शासन-संस्थाओं को धीरे-धीरे उन्नत बनाया जाय। इस घोषणा से कुछ लोगों को सान्त्वना मिली और आन्दोलन की उग्रता दब गई।

मांटेगू-चेम्स फ़ोर्ड शासन-सुधार

इसके बाद देश की राजनीतिक परिस्थिति की जाँच करके तत्कालीन भारत-सचिव मि० मांटेगू और वायसराय लार्ड चेम्सफ़ोर्ड ने मिलकर शासन-सुधार की एक नवीन योजना तैयार की। यह योजना 'मांटेगू-चेम्सफ़ोर्ड योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें मुख्यतया निम्नलिखित बातें थीं:—

१—प्रान्तीय शासन में एक निश्चित क्षेत्र के अन्तर्गत उत्तरदायित्व पूर्ण शासन देने का सिद्धान्त माना गया।

२—शासन दो विभागों में बाँट दिया गया। सुरक्षित विभाग और हस्तान्तरित विभाग।

(क) सुरक्षित विभाग में फाइनैन्स, पुलिस, जेल आदि रक्खे गये।

(ख) हस्तान्तरित विभाग में लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट, स्वास्थ्य और सफाई, शिक्षा, आबकारी आदि रक्खे गये।

३—सुरक्षित विभाग एक्जीक्यूटिव कौन्सिल के हाथ में और हस्तान्तरित विभाग मन्त्रियों को सौंपा गया।

४—कौन्सिलों के सदस्यों के निर्वाचन का अधिकार जनता को दिया गया।

५—गवर्नर को अधिकार था कि वह जब चाहे धारा-सभा को भंग कर दे और चाहे तो उसकी अवधि बढ़ा दे।

६—कौन्सिलों को क़ानून बनाने का अधिकार दिया गया, परन्तु साथ ही गवर्नर को यह अधिकार था कि वह जिस क़ानून को चाहे रद्द कर दे।

७—केन्द्रीय शासन के लिए लेजिस्लेटिव असेम्बली और कौन्सिल आफ़ स्टेट दो संस्थाएँ बनाई गईं।

इस प्रकार का शासन-सुधार दिया गया और साथ ही यह भी कहा गया कि उत्तरदायित्व पूर्ण शासनाधिकार धीरे-धीरे दिया जायगा।

युद्ध के बाद

यूरोपीय महायुद्ध में भारतवर्ष ने ब्रिटिश सरकार को जी खोलकर धन-जन की सहायता दी थी, लाखों आदमी और करोड़ों रुपये देकर अंग्रेजों को विजयी बनाने का प्रयत्न किया गया था। लड़ाई का खर्च निकालने के लिए भारत-सरकार ने अनेक प्रकार के कर आदि लगाये थे, जिनका बोझ गरीब भारत के लिए असह्य हो गया था। फिर भी उस संकट के समय में देश ने कन्धे-से-कन्धा लगाकर अंग्रेजी सरकार की सहायता की। इसलिए सम्भवतः उन्हें यह आशा थी कि जिसके लिए उन्होंने जान-माल की बाजी लगा दी है, वह उनकी तकलीफों को दूर करने का प्रयत्न तो अवश्य ही करेगा। इसके अतिरिक्त स्वयं ब्रिटिश सरकार ने १९१७ में बड़ी-बड़ी आशाएँ दिलाईं थीं। इसलिए सबको यह आशा थी कि लड़ाई समाप्त होते ही भारतवर्ष को राजनीतिक अधिकार दिये जायँगे। परन्तु 'मांटेगू-चेम्सफ़ोर्ड शासन-सुधार' के नाम पर जो कुछ मिला वह सब निराशा पूर्ण था। देश का जाग्रत समुदाय इसके विरुद्ध आन्दोलन कर रहा था।

रौलट एक्ट

प्रायः इसके साथ ही साथ रौलट कमेटी बैठी जिसने देश के आतङ्कवादी आन्दोलन के आधार पर 'रौलट एक्ट' बनाने की सिफ़ारिश की। इस एक्ट के अनुसार निम्न बातें हो सकती थीं:—

१—किसी क्रान्तिकारी अपराध के सन्देह में किसी भी व्यक्ति को पुलिस पकड़ या पकड़वा सकेगी।

२—उसका मुक़द्दमा खुली अदालत में न होकर बन्द कमरे में होगा।

३—बन्द कमरे के फ़ैसले की अपील भी न हो सकेगी।

४—बिना वारंट के किसी भी व्यक्ति को सन्देह होने पर गिरफ्तार किया जा सकेगा आदि।

इससे जनता का क्षोभ और अधिक बढ़ा। जनता ने इसके विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। यहाँ तक कि प्रधान नरम दली सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बिल को विचारार्थ स्थगित रखने की बड़ी आरजू-मिन्नतें कीं, परन्तु वह भी ठुकरा दी गईं। इससे जनमत और भी क्षुब्ध हो गया।

सत्याग्रह का श्रीगणेश

महात्मा गान्धी इस समय तक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ण तत्परता के साथ अवतीर्ण हो चुके थे। उन्होंने इस क़ानून के विरोध में सत्याग्रह आन्दोलन करने का निश्चय किया। दिल्ली में इसके विरोध में जो जुलूस निकाला गया उस पर गोलियाँ चलाई गईं। महात्मा जी ने छः अप्रेल १६१६ से सत्याग्रह का श्रीगणेश करने की घोषणा की। सत्याग्रह प्रारम्भ करने का पहला दिन आत्म-शुद्धि दिवस मनाया गया। इस दिन महात्मा गान्धी तथा उनके अनुयायियों और करोड़ों मनुष्यों ने २४ घण्टे का उपवास किया और उपवास का सारा समय प्रार्थना में ही व्यतीत किया। इस आन्दोलन में भाग लेने के कारण पंजाब में उस समय के कांग्रेस के नेता डा० किचलू एवं डा० सत्यपाल को गिरफ्तार करके किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया गया। उनका पता पूछने के लिए जनता गई तो उस पर भी गोलियाँ चलाई गईं। अहमदाबाद एवं अमृतसर में इस दमन से जनता उत्तेजित हो गई और उसने सरकार के इन अत्याचारों का दिल खोलकर सामना किया। महात्मा जी के अन्तरात्मा को इससे बहुत ठेस पहुँची। उन्होंने बिना तैयारी आन्दोलन चलाने की अपनी ग़लती को महसूस किया और सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

जलियाँवाला काण्ड

अमृतसर में नौकरशाही अपने असली रूप में प्रकट हुई। जलियाँ-

वाला बाग की प्रतिवाद सभा में जुटी हुई निहत्थी, निरीह एवं शान्त जनता पर तितर-बितर हो जाने की आज्ञा दिये बिना ही गोलियाँ चलाई गईं। दस मिनट के भीतर १६५० गोलियाँ दागी गईं। घायलों तथा मृत व्यक्तियों की संख्या ११३७ थी; जिन मे ४०० के लगभग व्यक्ति शहीद हो गए थे। इस हत्याकांड की क्रूरता का उपसंहार पंजाब में फौजी शासन (मार्शल लॉ) जारी करके किया गया। वहाँ के निवासियों को घुटने के बल चलाया गया, नंगे बदन में कोड़े लगाये गये और न जाने किस-किस प्रकार की नृशंसतायें की गईं। इस नर-संहार और अत्याचार में पंजाब के गवर्नर सर माइकेल ओडायर और जनरल डायर का ज़बर्दस्त हाथ था और तत्कालीन वायसराय चेम्स फोर्ड पर भी इसका दायित्व था। इस घटना से देश-वासियों का क्षोभ चरम सीमा तक पहुँच गया। नेताओं के सामने यही प्रधान विषय था।

जलियाँ वाला बाग की घटनाओं के सम्बन्ध में जाँच करने पर जिन बातों का पता चला था उनसे चारों ओर खलबली मच गई थी। जले पर नमक छिड़कने का काम किया उस पर शासन-सुधारों की घोषणा ने। भारत के अपार धन और जन की क़ुरबानी के बाद जो तथ्यहीन शासन-सुधार मिले वे बहुत ही अपमानजनक प्रतीत हुए। गान्धी जी तथा अन्य नरम दली नेताओं के आग्रह से कांग्रेस में इन शासन-सुधारों को अमल में लाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

इसके साथ ही साथ खिलाफ़त का प्रश्न आया। टर्की ने जब यूरोपीय युद्ध में जर्मनी का साथ देना निश्चय किया था उसी समय से भारत के मुसलमानों को इस बात की आशंका थी कि उनके धार्मिक स्थानों को अन्य मुस्लिम राष्ट्रों को दे दिया जायगा। इसलिए खिलाफ़त की रक्षा का प्रश्न भी सामने आया।

इस प्रकार पंजाब के भीषण नर-हत्या कांड और खिलाफ़त के दो प्रश्नों को लेकर कांग्रेस ने देश में प्रचण्ड आन्दोलन उठाया। १९२० में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ते में हुआ जिसमें असहयोग-

आन्दोलन की रूप-रेखा स्वीकार की गई । इसी कांग्रेस में 'तिलक स्वराज्य फंड' का धन-संग्रह करने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और यद्यपि फण्ड केवल एक करोड़ रुपये एकत्रित करने के लिए खोला गया था तथापि उसमें थोड़े से समय में ही १ करोड़ १५ लाख रुपये इकट्ठे हो गये ।

४

असहयोग : नया अध्याय

गर्जन और संघर्ष

कांग्रेस को कर्म-पथ पर आरूढ़ करने का श्रेय सर्व प्रथम लोकमान्य तिलक को मिला। किन्तु जिन भावनाओं एवं कल्पनाओं से प्रेरित होकर कांग्रेस पर उन्होंने अपना क़ब्ज़ा जमाया था, उन्हें पूरा करने को वे जीवित न रहे तथा उनके ईजाद किये गये असहयोग के मार्ग को गान्धीजी ने अपनाया और उसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी मिली। १९२० से हमारी कांग्रेस बहस करने वाली सभा की अवस्था से निकलकर योद्धाओं की फौज बन गई थी। भारतीय स्वाधीनता में केवल सदाशयता से विश्वास करने वाले लोग उसमें अब भी थे, लेकिन उसके नायक, अग्रणी, सेनानी और शूरमा तो अब वे ही हो सकते थे जिनमें त्याग की क्षमता हो। नेता क्या है, और आज़ादी की लड़ाई किसे कहते हैं इसका सच्चा प्रमाण सबसे पहले गान्धीजी ने दिया। बल्कि यों कहना चाहिए कि तिलक की स्वराज्य और असहयोग की नीति को छोड़ कर उन्होंने कांग्रेस के पूर्व इतिहास से कुछ भी नहीं लिया। स्वयं कांग्रेस भी नाम से ही पहली कांग्रेस रही। यदि आज से ३०–४० वर्ष का कांग्रेस का कोई नेता अब कांग्रेस को देखे तो उसकी रूह काँप जायगी और वह आँख मूँदकर पीछे हट जायगा। मानो कांग्रेस कभी उसकी अपनी संस्था ही नहीं रही हो।

महात्मा गान्धीजी ने अपने हृदय की आग प्रत्येक भारतवासी के हृदय में भर दी और प्रत्येक के हृदय पर यह अमिट अक्षरों में अङ्कित कर दिया कि अङ्गरेजी शासन अन्यायपूर्ण एवं दुःशील है और

शीघ्रातिशीघ्र इसकी समाप्ति हो जानी चाहिए। उन्होंने भारतीयों के दिलों से भय को निकाल दिया। उनके नेतृत्व में चलाये गये आन्दोलनों का प्रभाव देश की वीरता को जाग्रत करने का कारण हुआ। उन्होंने जनता में आत्म-बल का उत्थान किया और शासन के ज़ुल्मी अफ़सरों के भीतर एक प्रकार की दहशत उत्पन्न कर दी। उनके रचनात्मक कार्यों के क्रम ने जहाँ अङ्गरेजों की जेब पर प्रभाव डाला वहाँ उन्हीं कामों में देश की राष्ट्रीय भावनाएँ भी साकार हो गईं।

असहयोग-आन्दोलन

जैसा कि हम ऊपर की पंक्तियों में लिख चुके हैं असहयोग की भावना गांधीजी ने लोकमान्य तिलक से ग्रहण की। उन्होंने तिलक द्वारा प्रदर्शित मार्ग को और भी प्रशस्त कर दिया। १ अगस्त १९२० से गाँधी जी ने असहयोग की घोषणा कर दी। आन्दोलन के इस रूप का मौलिक विचार महात्मा गान्धी ने किया था। कांग्रेस से उन्होंने इसकी स्वीकृति ले ली। इतना होने पर भी कुछ नेता इससे सहमत न थे; परन्तु थोड़े ही समय में उन्हें अपनी ग़लती अनुभव हुई और वे एकमत होकर इसको सफल बनाने में लग गये। यदि इस कार्य में लोकमान्य तिलक का भी सहयोग प्राप्त हो जाता तो कदाचित् इसको शीघ्र और अधिक सफलता मिलती। खेद है कि इस आन्दोलन के शुरू होने से पूर्व ही उनका शरीरान्त हो गया था।

असहयोग आन्दोलन में निम्नलिखित बातों को कार्यान्वित करने पर जोर दिया गया था:—

१—कौंसिलों का बहिष्कार किया जाय।

२—स्कूलों और कालिजों का बहिष्कार किया जाय।

३—विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया जाय।

४—नशीली चीजों का बहिष्कार किया जाय।

५—चर्खा और खद्दर का प्रचार किया जाय।

६—अदालतों का बहिष्कार किया जाय।

७—सब कामों में पूर्णतया अहिंसा का ही पालन किया जाय।

ऊपर की पंक्तियों में लिखा जा चुका है कि असहयोग-आन्दोलन छेड़ने के दो कारण थे। एक तो पंजाब का हत्याकाण्ड और दूसरे टर्की खलीफ़ा के विरुद्ध जो आचरण हो रहा था वह। इस पंजाब के हत्याकाण्ड और खिलाफ़त दोनों के लिये असहयोग का आरम्भ हुआ। खिलाफत-आन्दोलन विशेषत: मुसलमानों से सम्बन्ध रखता था, इसलिए असहयोग आन्दोलन में मुसलमानों ने भी साथ दिया और हिन्दू-मुसलमान दोनों मिलकर उपरोक्त कार्य-क्रम को कार्यान्वित करने की चेष्टा करने लगे। इतने बड़े देश व्यापी आन्दोलन का यह पहला ही अवसर था। समस्त देश एक स्वर से असहयोग का समर्थन करने लगा। उधर सरकार ने भी दमन-नीति की शरण ली और आन्दोलन के कुचलने का प्रयत्न किया।

असहयोग का कारण

महात्मा गान्धी ने असहयोग के कारणों का उल्लेख करते हुए कहा "मुसलमानों के साथ ब्रिटिश सरकार ने तुर्की और खिलाफ़त के मामले में विश्वास-घात किया है। इसने पंजाब का अपमान किया है। जनता की इच्छा के विरुद्ध भी सरकार उस पर जबरदस्ती हुकूमत स्थापित करना चाहती है और पंजाब में अपने किये गये कुकर्मों पर पश्चात्ताप करने तक का नाम नहीं लेती।" असहयोग के बाद लोग सत्याग्रह तथा लगानबन्दी के लिए आन्दोलन करने लगे। अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को यह अधिकार दिया कि वे सामूहिक या व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़ सकती हैं बशर्ते कि उनके यहाँ इसकी उचित तैयारी हो। गुजरात प्रान्त ने इस दिशा में सबसे आगे कदम बढ़ाया। बारदोली में गान्धीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह शुरू करने की बात तय पाई। १६२० के २३ नवम्बर को सत्याग्रह छिड़ने वाला था किन्तु १७ नवम्बर को प्रिंस ऑफ़ वेल्स के आगमन पर समस्त देश में जो हड़ताल मनाई जा रही थी, उसके सिलसिले में बम्बई में एक दुर्घटना

हो गई। गान्धी जी ने इसके लिए सख्त अफसोस जाहिर किया और उपवास तथा प्रार्थनायें कीं।

गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं

सरकार इस परिस्थिति से कुछ घबरा गई थी। सब से अधिक उसकी घबराहट राजकुमार के आगमन पर होनेवाली हड़ताल की आशंका से बढ़ी। बस उसने दमन करने की ठानी। खिलाफत और कांग्रेस-कार्य के लिए की जाने वाली सभायें ग़ैरक़ानूनी घोषित की गईं। इस घोषणा के होते ही दबादब गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं। देशबन्धु चित-रंजनदास भी गिरफ्तार कर लिये गये। वे कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के सभापति होने वाले थे। सरकार के इस रुख से हतोत्साहित न होकर काँग्रेस कमेटी ने सारे देश में स्वयं सेवकों की भर्ती का आन्दोलन शुरू किया और ब्रिटिश सरकार को इस चुनौती का जवाब देने की तैयारियाँ होने लगीं। अ०भा० कांग्रेस ने गान्धीजी को अपना उत्तरा-धिकारी चुनने के साथ-साथ उन्हें कांग्रेस का एक मात्र अधिनायक बना दिया। सरकार के दमन के फलस्वरूप असहयोग नेता जेल भेजे जाने लगे थे। असहयोग आंदोलन से पूर्व जेल एक बहुत भयङ्कर वस्तु समझी जाती थी, जिससे सबको घृणा थी। जेल गये हुए लोग समाज से बहि-ष्कृत कर दिये जाते थे। परन्तु असहयोग ने यह सब दूर कर दिया। दूसरी बात असहयोग-आन्दोलन से यह हुई कि सरकारी अफसरों, थानेदारों, डिप्टी कलक्टरों आदि का भय जनता के मन से सर्वथा जाता रहा। वे निर्भीक होकर अपनी बातें सबके सामने कहने लगे। और तीसरी बात, जो सबसे अधिक मूल्यवान् थी, यह हुई कि जनता में राजनीतिक जागरण हुआ। वह यह समझने लगी थी कि स्वराज्य क्या है और उसके लिये क्या आन्दोलन किया जा रहा है। इस प्रकार असह-योग आन्दोलन सर्वव्यापी जन-साधारण का आन्दोलन हुआ और देशवासियों ने कांग्रेस तथा स्वराज्य को भली प्रकार जाना। ज्यों-ज्यों कार्य-कर्त्ता और नेतागण कार्य-क्षेत्र में अवतरित होते जाते थे त्यों-त्यों वे

जेल भेजे जा रहे थे। जेल जाना ही एक प्रकार से आन्दोलन के कार्य-क्रम का अङ्ग बन गया था।

प्रिन्स ऑफ वेल्स का आगमन

इसी अवसर पर प्रिंस ऑफ़ वेल्स (इस समय ड्यूक ऑव विण्डसर) भारत आये। उनके आने पर पूर्व निश्चयानुसार समस्त देश में हड़ताल मनाई गई। जहाँ-जहाँ वे गये वहाँ-वहाँ पूर्ण हड़ताल रक्खी गई। देश में हड़ताल मनाने का वह पहला ही मौक़ा था। परन्तु इतनी सफलता के साथ हड़तालें मनाई गईं कि कल्पना करके आश्चर्य होता है। बड़े-बड़े शहरों में जहाँ यातायात और व्यापार-व्यवसाय से मारे धकापेल मची रहती थी, हड़ताल के दिन सुनसान श्मशान का दृश्य दिखाई पड़ने लगा था। हिन्दू-मुसलमान सब मिलकर हड़ताल कर रहे थे और उन्हें इतनी सफलता मिली थी कि यदि किसी आदमी के घर पर नमक भी कम पड़ जाय तो बाज़ार में उसका मिलना असम्भव था। इतनी सफल हड़तालें आज तक, जब कि राजनीतिक जागरण पहले से अधिक व्यापक है, नहीं हो सकीं। उनकी सफलता का रहस्य मुख्यतः यह था कि उस समय हिन्दू और मुसलमान मिले हुए थे। उसके बाद उनकी आपसी फूट ने अब तक तो बाधायें ही डालीं।

असहयोग स्थगित

जब कांग्रेस ने महात्मा गान्धी को अपना अधिनायक मनोनीत कर लिया था तो १६२२ के फरवरी मास में गान्धीजी ने वायसराय के पास इस आशय का पत्र लिखा था कि यदि ७ दिन के अन्दर सरकार ने अपनी नीति में परिवर्तन की कोई सन्तोषजनक घोषणा न की तो बार-दोली में सामूहिक सत्याग्रह शुरू किया जायगा। अभी तक पत्र वाय-सराय के पास पहुँचने भी न पाया था कि गोरखपुर में चौरीचौरा की ऐतिहासिक घटना घटित हो गई। सर्वत्र हिंसा के चिन्ह दिखाई देने लगे। थानों में आग लगाई गई और मार-पीट की भी खबरें आईं। महात्माजी जो इस असहयोग आन्दोलन के प्रमुख नेता थे, अहिंसा पर

सबसे अधिक जोर देते आ रहे थे। इधर 'चौरीचौरा' में हिंसा के चिन्ह दिखलाई पड़े, जिससे उन्हें भारी निराशा और चिन्ता हुई। बारदोली में कांग्रेस-कमेटी की बैठक हो रही थी, उसमें आन्दोलन को और भी अधिक जोरदार बनाने की बातें सोची जा रही थीं कि उक्त समाचार मिले। महात्माजी को इससे भारी निराशा हुई और उन्होंने निर्णय किया कि ऐसी हिंसक मनोवृत्ति के मौजूद रहते हुए असहयोग-आन्दोलन नहीं छेड़ा जा सकता। कांग्रेस ने इस सम्मति का समर्थन किया और परिणाम स्वरूप असहयोग-आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस के सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाय और उन्हें अनुशासन एवं संगठन में रहने की शिक्षा दी जाय। वे इस परिणाम पर पहुँचे कि काँग्रेसी विशेषतः रचनात्मक कार्यों में ही अपना समय लगाएँ। कम से कम एक करोड़ सदस्य बना कर ही दम लिया जाय और चरखा तथा स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार किया जाय। अस्पृश्यता निवारण, साम्प्रदायिक एकता, राष्ट्रीय पाठशालाओं का गठन और झगड़ों का निपटारा करने के लिए ग्रामों एवं नगरों में पंचायतों के निर्माण की योजना तैयार की गई।

साम्प्रदायिक उपद्रव

असहयोग-आन्दोलन के स्थगित होते ही विरोधियों को मौक़ा मिला। कुछ उपद्रवी सामने आये और साम्प्रदायिक उपद्रव होने लगे। मोपला-उपद्रव से जो शुरूआत हुई वह धीरे-धीरे समस्त देश में फैली। उपद्रव इतने बढ़े कि असहयोग के ज़माने में हिन्दू-मुसलमानों का जो मिलाप हुआ था वह छिन्न-भिन्न हो गया। कुछ ऐसे व्यक्तियों ने, जिन्हें अपना मतलब हल करना था, इस फूट डालने में बड़ा कमाल दिखाया और देश के दुर्भाग्य से वे अपने इस दुष्ट प्रयत्न में सफल हुए। जो हो, दोनों सम्प्रदायों का मेल-मिलाप हो गया।

सत्याग्रह-जाँच-कमेटी

रचनात्मक योजना के प्रारम्भ करने के समय तक लोगों के जोश

ठण्डे पड़ गये थे। इसके अतिरिक्त सरकार ने गान्धीजी पर राज-द्रोहात्मक लेख लिखने के अपराध में मुकदमा चलाया और उन्हें ६ साल की सजा दे दी। इस प्रकार असहयोग आन्दोलन स्थगित हो जाने, देश में हिन्दू झगड़े होने और सर्वमान्य नेता महात्मा गान्धी के जेल चले जाने आदि के कारण देश में शिथिलता का संचार हुआ। कांग्रेस बहुत पहले से सत्याग्रह संग्राम छेड़ने की तैयारी शुरू कर रही थी। इसी अभि-प्राय से सदस्यों की संख्या आदि में वृद्धि भी की जा रही थी; परन्तु इस शिथिलता ने नेताओं में कुछ झिझक पैदा कर दी। इस से जनता में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे। नीति-परिवर्तन के लिए जोरों से आवाज बुलन्द की जाने लगी। परिणाम स्वरूप कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि एक जाँच कमेटी नियुक्त की जाय जो यह जाँच करे कि देश सत्याग्रह के लिये कहाँ तक तैयार है। इसी विचारसे 'सत्याग्रह जाँच कमेटी' की नियुक्ति हुई। उसने जाँच की; परन्तु सदस्यों के निर्णय सर्व-सम्मत नहीं हुए। इसके आधे सदस्यों ने यह निर्णय दिया कि देश सत्या-ग्रह के लिये तैयार है, और आधों ने कहा कि सत्याग्रह के लिये देश अभी तैयार नहीं है। जिसमें श्री विट्ठलभाई पटेल, देशबन्धु दास और श्री मोतीलाल नेहरू आदि प्रमुख थे। इन नेताओं ने अपनी रिपोर्ट में यह भी सुझाव पेश किया कि सरकार की दमन-नीति का मुकाबिला करने और उसके काम में अड़ंगा डालने के लिये कौंसिलों में कांग्रेस के सदस्य अधिक से अधिक संख्या में भेजे जायँ। दूसरे पक्ष ने, जिसमें श्री राजगोपालाचार्य, डा० राजेन्द्रप्रसाद, डा० अंसारी और श्री एस० कस्तूरी रंगा आयङ्गर आदि प्रमुख थे, इस सुझाव का विरोध किया। इस प्रकार परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी नाम से दो दल हो गये और दोनों में संघर्ष भी चलने लगा।

स्वराज्य पार्टी

इसी पारस्परिक संघर्ष के बीच गया में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ।

इसके सभापति स्व० देशबन्धु चित्तरंजनदास निर्वाचित हुए। दास बाबू की इच्छा थी कि कांग्रेस कौन्सिलों में दखल करे और वैधानिक लड़ाई लड़ी जाय। वे परिवर्तनवादी थे। उन्होंने राष्ट्र-पति की हैसियत से अपने भाषण में बड़े जोरदार शब्दों में परिवर्तन की आवश्यकता और कौंसिल-प्रवेश के हितों का वर्णन किया। किन्तु श्री राजगोपालाचार्य के नेतृत्व में अपरिवर्तनवादियों ने इस विचार का विरोध किया और चूँकि उपस्थित जनता ने सहयोग राजगोपालाचार्य को दिया, इसलिए परिवर्तनवादी नीति का समर्थन नहीं हुआ और वह नीति निर्धारित न हो सकी। उस स्थिति में कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त होते ही दास बाबू ने सभापतित्व से त्याग-पत्र दे दिया। फिर उन्होंने श्री मोतीलाल नेहरू के सहयोग से स्वराज्य-पार्टी को जन्म दिया और वे उसके द्वारा अपने कौन्सिल-प्रवेश के कार्य-क्रम को सफल बनाने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार फूट के प्रत्यक्ष चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। यह स्थिति अधिक वांछनीय न थी, अतः मौलाना अबुलकलाम आजाद की अध्यक्षता में दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ; जिसमें यह निश्चय किया गया कि यद्यपि कौन्सिल-प्रवेश का कांग्रेस समर्थन नहीं करती तथापि वह किसी ऐसे सदस्य को, जो कौन्सिल-प्रवेश का पक्षपाती है, रोकती भी नहीं है कि वह कौन्सिल में न जाय। जो चाहें वे कौन्सिल में जा सकते हैं और उम्मीदवारों को वोट दे सकते हैं। उसके बाद ही कोकोनाडा में कांग्रेस का जो साधारण अधिवेशन हुआ, उसमें इस निर्णय का समर्थन किया गया। उसके बाद कांग्रेस की ओर से कौन्सिल प्रवेश के विरोध में जो आयोजन हो रहा था, वह रोक दिया गया।

कौन्सिल-प्रवेश

इन दिनों महात्मा गान्धी जेल में थे। वहाँ उनके पेट में फोड़ा हुआ। उसमें चीरा लगने के बाद बड़ी नाजुक हालत होने पर वे जेल से रिहा किये गये। बाहर आकर उन्होंने परिस्थितियों का अध्ययन किया और यद्यपि वे कौन्सिल-प्रवेश के पक्षपाती नहीं थे तथा उन्होंने इसका विरोध

नहीं किया, प्रत्युत यही कहा कि कौंसिलों में जाकर कांग्रेसी सदस्य रचनात्मक कार्य को प्रोत्साहन दें; वे वहाँ जाकर जनता के हित के प्रस्ताव पास करें और यदि सरकार उन प्रस्तावों पर अमल न करे तो वे कौन्सिल छोड़ कर प्रतिवाद स्वरूप बाहर चले आयें और बाहर से फिर जबरदस्त आन्दोलन छेड़ा जाय। इस राय से स्वराज्य-पार्टी के नेता सहमत थे। उन्होंने कौन्सिलों में उसी नीति का अनुसरण किया। स्वराज्य-पार्टी की ओर से राज-बन्दियों को रिहा कर देने और राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंस करके शासन-व्यवस्था में सुधार करने आदि के प्रस्ताव पेश किये गये जो पास हुए। उन प्रस्तावों के विरोध में सरकारी पक्ष को करारी हार खानी पड़ी थी। इस प्रकार कौंसिलों में स्वराज्य पार्टी का बड़ा प्रभाव जम गया।

१९२४ में महात्मा गान्धी के जेल से छूटने के बाद बेलगाँव में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसके अध्यक्ष महात्मा गान्धीजी चुने गये थे। आपने सारी परिस्थिति का अध्ययन करके अपने भाषण में सत्याग्रह स्थगित कर देने की सलाह दी। सुभाष बाबू के त्रिपुरी-अधिवेशन के भाषण को छोड़कर शायद गान्धीजी का ही राष्ट्र-पति की हैसियत से सबसे छोटा भाषण रहा। सत्याग्रह स्थगित करने के बाद गान्धीजी देश में रचनात्मक कार्य-क्रम का प्रचार करने के लिये यात्रायें करने लगे और उन्हें इस काम में किसी हद तक सफलता भी मिली। कांग्रेस के इस निश्चय से कि जहाँ उचित समझा जाय वहाँ सरकार को सहयोग भी दिया जाय, वैसे अड़ंगा नीति भी बरती जाय कौंसिल-प्रवेश का सिद्धान्त पुष्टि पा गया था। परिणाम स्वरूप कौंसिलों के चुनावों में कांग्रेसी सदस्यों की बहुत बड़ी संख्या पहुँची और उनकी धाक भी खूब जमी। इस अवधि के अन्दर अन्य बातों के अतिरिक्त प्रधान रूप में यह आन्दोलन उठाया गया था कि शासन-सुधार शीघ्र-से-शीघ्र किये जायँ।

साइमन कमीशन

शासन-सुधारों की माँग का जो आन्दोलन देश में प्रचलित हुआ

वह निरर्थक नहीं गया । ब्रिटिश सरकार को भी इस सम्बन्ध में सोचना पड़ा और यद्यपि उसकी मंशा समय को टालने की ही थी तथापि उसे भारतवासियों को भुलावा देने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति करनी पड़ी । सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन नियुक्त हुआ, जिसे यह कार्य सौंपा गया कि वह भारतवर्ष की अवस्था की जाँच करे और शासन-सुधार सम्बन्धी अपनी राय भी पेश करे । यह कमीशन १९२७ ई० में नियुक्त हुआ । १९२८ ई० के आरम्भ में इसने भारत का दौरा किया । साइमन कमीशन में किसी भारतीय को स्थान नहीं दिया गया था, इसलिए कांग्रेस ने उसका बहिष्कार करना निश्चय किया । यह महत्त्वपूर्ण निश्चय मद्रास-कांग्रेस में किया गया था । सर्व प्रथम इसी कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पेश हुआ था, किन्तु किन्हीं अनिवार्य परिस्थितियों के कारण अस्वीकृत कर दिया गया । इसकी अस्वीकृति का एक यह कारण भी था कि कांग्रेसियों को तब तक विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत रहते हुए ही भारतवर्ष मुकम्मिल आजादी का उपयोग कर सकता है । अतः औपनिवेशिक स्वराज्य से ही अधिकांश कांग्रेसी सन्तुष्ट थे । किन्तु इस धारणा को उक्त साइमन कमीशन की नियुक्ति से ठेस लगी । भारत के राष्ट्रवादियों के लिए ब्रिटिश सरकार की यह कार्यवाही बिलकुल अपमानजनक लगी थी । इसीलिए इसके बहिष्कार का निश्चय किया गया था । ३ फरवरी १९२८ ई० को साइमन कमीशन बम्बई पहुँचा और उसके बाद लाहौर, देहली, कानपुर, लखनऊ, पटना, कलकत्ता आदि स्थानों में गया । इन सब स्थानों में साइमन कमीशन का बहिष्कार किया गया और विरोधी प्रदर्शन हुए । विरोध-प्रदर्शन में पुलिस की ओर से जनता पर लाठियाँ बरसाई गईं, जिनसे अनेक प्रमुख कांग्रेसी जख्मी हुए । पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतराय जैसे महान् नेता पर भी लाठी-प्रहार करने में पुलिसवाले नहीं हिचके और उन्हें काफी चोट पहुँचाई, जिसके कारण अन्त में उनका शरीरान्त भी हो गया । लखनऊ आदि स्थानों में भी अधिकारियों ने बड़ी बर्बरता से काम लिया ।

नेहरू-रिपोर्ट

ऊपर कहा जा चुका है कि देश में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य फैल गया था। उसे दूर करने के लिए देश के नेताओं ने प्रयत्न किया। मेल-मिलाप के लिए ही १६२७ में एक 'एकता-सम्मेलन' किया गया और उसका निर्णय कांग्रेस द्वारा समर्थित हुआ। उसके साथ ही साथ एक प्रयत्न और भी हुआ। मद्रास कांग्रेस के आदेशानुसार श्री मोतीलालजी नेहरू की अध्यक्षता में नये शासन-विधान की योजना बनाने के लिए एक कमेटी बैठी, जिसने भारतीय दृष्टि-कोण से शासन-सुधारों की रूप-रेखा तैयार की। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट अगस्त १६२८ में प्रकाशित की, जो भारतीय राजनीति के इतिहास में 'नेहरू-रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। मद्रास-कांग्रेस में स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के विरुद्ध भी 'नेहरू-कमेटी' ने औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर शासन-योजना तैयार की थी। कलकत्ता में जब पं० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ, तब इस आधार पर कि नेहरू कमेटी की रिपोर्ट मद्रास-अधिवेशन में स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के सिद्धान्त के प्रतिकूल तैयार की गई है, उसका फिर विरोध किया गया। अपने पूज्य पिता की अध्यक्षता में तैयार की गई इस आयोजना के विरोधी नेता जवाहर ही रहे। बाप-बेटे की यह सैद्धान्तिक लड़ाई देखने ही योग्य थी। बहुमत पं० मोतीलाल नेहरू के ही पक्ष में था और कांग्रेस ने इस योजना को इस आधार पर स्वीकार किया कि यदि सरकार ने 'नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट' को मंजूर नहीं किया तो कांग्रेस असहयोग तथा सत्याग्रह की नीति ग्रहण करेगी।

५

पूर्ण स्वाधीनता-ध्येय

मेरठ-षड्यन्त्र-केस

पिछले अध्याय में हम यह उल्लेख कर ही चुके हैं कि जलियाँवाला काण्ड एवं साइमन कमीशन की बर्बरताओं के कारण देश में भीषण असन्तोष फैल रहा था। इस असन्तोष की आग से आतङ्कित हो २० मार्च १६२६ को बम्बई, पञ्जाब और यू० पी० के विविध नगरों में ताजीरात हिन्द की १२१ (अ) धारा के अनुसार सैकड़ों मकानों की तलाशी ली गई। जो लोग गिरफ्तार किये गये, उनमें कांग्रेस महासमिति के आठ सदस्य भी थे। गिरफ्तार किये गये लोगों को मेरठ ले जाकर उन पर मुकद्दमा चलाया गया। सभी अभियुक्तों पर साम्यवादी प्रचार का अभियोग लगाया गया था। आगे चलकर "न्यू स्पार्क" के सम्पादक मि० एच० एल० हर्चिसन भी इन्हीं अभियुक्तों में सम्मिलित कर लिये गये। अभियुक्तों की सहायता के लिए एक 'केन्द्रीय सुरक्षा-समिति' बनाई गई। इसमें मुख्यतः बड़े-बड़े कांग्रेसी ही थे। १५००) की रकम इस मुकद्दमे की पैरवी के लिए मंजूर की गई।

देश में यह बड़ा दमन-काल था। इस समय डाक्टर सण्डरलैण्ड की "इण्डिया इन बॉण्डेज" नामक पुस्तक को निषिद्ध ठहरा दिया और इसके प्रकाशित करने के अपराध में "माडर्न रिव्यू" के सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जी को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। असेम्बली-बम-केस के अभियुक्त सरदार भगतसिंह और बी० के० दत्त को आजन्म काले पानी की सजा दी गई। उन्होंने प्रकट किया था कि बम तो प्रदर्शन के लिए फेंका गया था। लाहौर-षड्यन्त्र-केस के अभियुक्तों की भूख हड़ताल का वर्णन यहाँ विस्तार से करना अप्रासंगिक होगा। इन्हीं

दिनों कलकत्ते में भी एक सामूहिक आन्दोलन चल रहा था। इसमें कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य श्री सुभासचन्द्र बोस और अन्य कई प्रमुख कांग्रेसी अभियुक्त थे। शंघाई और मलाया राज्यों से भी राजनैतिक काण्डों से अनेक भारतीयों की गिरफ्तारी के समाचार मिले थे।

ये कई मुकद्मे तो चल ही रहे थे और यत्र-तत्र अनेक राजनैतिक एवं मजदूर कार्यकर्त्ताओं को सजायें दी जा रही थीं। इनके अतिरिक्त पुलिस दमन के नए तरीक़े प्रयोग में ला रही थी, जिन्हें कांग्रेस-महासमिति ने जङ्गली बताया। एक अवसर पर लाहौर-षड्यन्त्र-केस के अभियुक्तों की सफाई के लिए धन एकत्रित करने वाले सात युवकों को पुलिस ने जिला मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में इतना मारा गया कि उनमें से कुछ बेसुध तक हो गये। चोटें भी उनके गहरी लगीं। 'साम्राज्यवाद का नाश हो', 'क्रान्ति अमर हो' ये दो नारे लगाना ही उनका एक मात्र अपराध था। लाहौर-षड्यन्त्र-केस के अभियुक्तों के साथ तो इससे भी अधिक पाशविक व्यवहार किया गया। वे भी न्यायाधीश के सामने खुली अदालत में पीटे गये। यह भी स्मरण रखने की बात है कि भारत की भिन्न-भिन्न जेलों में और अण्डमान द्वीप में भी इन दिनों बहुत से लम्बी सजाओं वाले राजनैतिक बन्दी थे। इनको सन् १६१६ में 'मार्शल-लॉ' द्वारा स्थापित विशेष अदालतों ने सजायें दी थीं। इनके अतिरिक्त २७ राजनैतिक बन्दी वे थे, जो १६१४-१५ के युद्ध-काल में काले पानी की सजायें पा चुके थे। इन अभियुक्तों के मुकद्मे भी विशेष अदालतों के सामने हुए, मामूली अदालतों में नहीं।

यतीन्द्र का अनशन

देश में उक्त अत्याचारों के कारण जागृति हो रही थी। नेताओं की गिरफ्तारियाँ सर्वत्र जारी रहीं। पञ्जाब में सरदार मंगलसिंह, मौलाना जफ़रअली खाँ, मास्टर मोतासिंह और डाक्टर सत्यपाल एवं आन्ध्र देश में श्री अन्नपूर्णिमा पकड़े गये। मास्टर मोतासिंह तो अभी सात वर्ष कैद की सजा भुगत कर बाहर निकले ही थे। डाक्टर सत्यपाल को २ वर्ष की

कड़ी कैद मिली। पञ्जाब में दमन का जोर ख़ास तौर पर रहा। बाहर तो लोग यों पकड़े ही जा रहे थे, जेलों के भीतर भी अत्यन्त कठोरता का व्यवहार किया जा रहा था। श्री भगतसिंह, दत्त और अन्य कई क़ैदियों की भूख-हड़ताल को इस समय तक डेढ़ महीना हो चुका था। श्री भगत-सिंह व दत्त को असेम्बली-बम-केस के सिलसिले में तो आजीवन कारा-वास की सजा हुई ही थी, साथ ही ये दोनों 'लाहौर-षड्यन्त्र-केस' के मुकदमे में भी अभियुक्त थे। हाँ, पीछे से श्री दत्त को इस मुकदमे से छोड़ दिया गया था। यह मुकदमा लाहौर-पुलिस के मि० सांडर्स नामक अफसर की हत्या के कारण हुआ था। यह हत्या १७ सितम्बर १९२८ को दिन के ४ बजे हुई थी। भूख-हड़ताल का उद्देश्य कुछ कष्टों का निवारण और विशेषतः क़ैदियों के लिए मानवोचित व्यवहार की प्राप्ति की माँग थी। इन अनशन करने वालों में श्री यतीन्द्रनाथ दास प्रमुख थे। श्री यतीन्द्र की शिकायत यह थी कि गोरे और हिन्दुस्तानी क़ैदियों के साथ भेद-भावपूर्ण व्यवहार किया जाता है। इन भूख हड़तालियों को जो ख़ास रियायतें दी गई थीं, जिनकी यतीन्द्र ने कुछ परवा नहीं की और मैक्सिनी की भाँति अकेले ही भूख हड़ताल पर अन्त तक डटे रहे और चौसठवें दिन अपने प्राणों की अमर आहुति देकर स्वातन्त्र्य-संग्राम के अध्वर्यु बने।

राउण्ड-टेबिल-कान्फ्रेंस

अब सरकार की चिन्ता बढ़ी। उसने जनता में शान्ति स्थापित करने एवं उसका सहयोग प्राप्त करने के लिए उद्योग करना चाहा। कांग्रेस द्वारा दी गई अवधि के भीतर ही अर्थात् अक्टूबर १९२९ में ही सरकार ने 'राउण्ड टेबिल कान्फ्रेंस' की घोषणा की। परन्तु इससे भी काम नहीं बना; क्योंकि 'राउण्ड-टेबिल-कान्फ्रेंस' सरकार अपनी मर्जी के अनुसार खेल समय टालने के लिये कर रही थी। महात्माजी तथा कांग्रेस का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में स्पष्ट था। वे इस बात का स्पष्टी-करण चाहते थे कि राउण्ड-टेबिल-कान्फ्रेंस इसलिए होगी कि उसमें जो

शासन-विधान तैयार किया जायगा वह औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मानकर तैयार किया जायगा। सरकार इसके लिये तैयार न थी; इसलिए कांग्रेस ने इसमें भाग नहीं लिया।

लाहौर-कांग्रेस का सभापतित्व

देश का इतिहास बदल रहा था; भविष्य के गर्भ में अनेक बड़ी-बड़ी घटनायें छिपी थीं। दूसरे अधिवेशनों की अपेक्षा लाहौर की कांग्रेस महत्व-पूर्ण थी। अब की बार उसे कुछ महत्वपूर्ण निर्णय करना था। सभापति के चुनाव का प्रश्न जब सामने आया तो दस प्रान्तों ने गान्धीजी के लिये, पाँच ने सरदार वल्लभ भाई पटेल के लिये और तीन ने पण्डित जवाहर-लाल नेहरू के लिये राय दी। गान्धी जी का चुनाव विधिपूर्वक घोषित हो गया। परन्तु उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया। विधान के अनुसार उनके स्थान पर दूसरा चुनाव होना आवश्यक था। अतः २८ सितम्बर १६२६ को लखनऊ में कांग्रेस महासमिति की बैठक हुई। सबकी दृष्टि गान्धी जी पर लगी हुई थी। वे ही एक ऐसे व्यक्ति दीखते थे कि जो कांग्रेस के सिद्धान्तों की पूर्णतया रक्षा करके उसे विजय-पथ पर अग्रसर कर सकते थे। कौंसिलों और उसके सदस्यों से पं० मोतीलाल नेहरु जैसों का उकता उठना भी छिपा नहीं रह गया था। कौंसिलों की सदस्यता को त्याग देने का निश्चय हो चुका था। परन्तु अब आगे क्या किया जाय, यह एक विचारणीय विषय था। सविनय अवज्ञा के अतिरिक्त इस समय और चारा भी न था। परन्तु इस मार्ग पर गान्धीजी के अतिरिक्त राष्ट्र का सफल नेतृत्व कौन करता ? यही एक प्रश्न सबके सामने था।

जनता को यह मालूम था कि गान्धीजी ने अपने हृदय की आग प्रत्येक भारतीय के हृदय में भर दी है और प्रत्येक भारतीय के हृदय पर यह बात भली प्रकार अंकित कर दी है कि अंग्रेजी शासन अन्यायपूर्ण एवं दुःशील है और शीघ्रातिशीघ्र इसका अन्त हो जाना चाहिए। उन्होंने भारतीयों के मनों से भय का भूत निकाल दिया और उनके नेतृत्व में चलाये गये आन्दोलनों का प्रभाव देश की वीरता को जाग्रत करने का कारण

हुआ। उन्होंने जनता में आत्म-बल का उत्थान किया और शासन के ज़ुल्मी अफ़सरों के भीतर एक प्रकार की दहशत पैदा कर दी। उनके रचनात्मक कार्यों के क्रम ने जहाँ अंग्रेजों की जेब पर असर डाला वहाँ उन्हीं कामों में देश की राष्ट्रीय भावनायें भी साकार हो गईं। १६२० के आन्दोलन के द्वारा उन्होंने निरस्त्र भारतीय जनता को अंग्रेजी फौज के मुकाबिले में खड़ी करके उसे आत्म-निर्भरता का पाठ पढ़ाया और उसे इस विश्वास से भर दिया कि खाली हाथों भी तोप और तलवार का सामना किया जा सकता है तथा यदि भारतीय लोग इस राज्य को उखाड़ फेंकने के लिये तैयार हों तो यह काम वे आसानी से कर सकते हैं।

जवाहर का नेतृत्व

लाहौर-कांग्रेस के सभापतित्व के प्रश्न को लेकर लखनऊ में फिर गान्धीजी पर जोर डाला गया। परन्तु उनकी दूरदर्शिता ने कांग्रेस की गद्दी पर एक ऐसे युवक को बिठाना चाहा जिस पर तरुण भारत का पूर्ण विश्वास हो। गान्धी जी ने इसके लिये जवाहरलाल नेहरू को सभापति बनाना उचित समझा। उस समय की तरुण पीढ़ी को कांग्रेस की नीति-रीति धीमी और सुस्त मालूम होती थी। ऐसी दशा में कांग्रेस की विजय-यात्रा को आगे बढ़ाने के लिए किसी युवक के हाथ में ही उसका नेतृत्व सौंपना आवश्यक था। श्री वल्लभभाई पटेल ने जवाहरलालजी के बीच में आना पसन्द नहीं किया। परिणाम स्वरूप एक मत से जवाहर-लाल नेहरू के ही सिर पर काँटों का ताज रक्खा गया।

पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा

यह अवस्था थी उस समय जब लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। भारत की तरुणाई के बेताज के बादशाह श्री जवाहरलाल नेहरू इस अधिवेशन के सभापति थे। देश ने काँटों का ताज बाप के सिर से उतार कर बेटे के सिर पर रखना ही उचित समझा। इस अधिवेशन के अवसर पर कलकत्ते में की गई एक वर्ष की अवधिवाली घोषणा का समय समाप्त हो चुका था और उस समय तक कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित

योजना सरकार ने स्वीकार न की थी। अतः लाहौर-कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता के इस प्रस्ताव को दुहराया। इधर ब्रिटिश सरकार की ओर से भारतीय समस्याओं को हल करने के लिए एक गोल मेज परिषद् की तैयारी भी हो रही थी। भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन कांग्रेस को इस सम्मेलन में भाग लेने के लिये फुसला रहे थे; किन्तु कांग्रेस ने इस अधिवेशन में उस सम्मेलन में भाग लेने से सर्वथा इन्कार कर दिया और अपने दल के सभी केन्द्रीय तथा धारा-सभाओं के सदस्यों को त्याग-पत्र देने का आदेश दिया। अखिल भारतीय कांग्रेस की महासमिति को इस बात का अधिकार दिया गया कि यदि वह आवश्यक समझे तो देश को असहयोग एवं सत्याग्रह का आदेश दे सकती है। २६ जनवरी १९३० को समग्र देश में स्वाधीनता दिवस मनाने की भी अपील की गई और देश ने उस अपील का जो स्वागत किया वह भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों में अंकित रहेगा।

सभापति का भाषण

इस कांग्रेस के सभापति श्री जवाहरलाल नेहरू का भाषण क्या था, बम का गोला था। उन्होंने सारे समझौते की बातों को धता बताते हुए अपने भाषण में साफ़-साफ़ कह दिया था—मैं तो साम्यवादी और प्रजातन्त्रवादी हूँ। मैं बादशाहों और राजाओं को नहीं मानता।" देश में हुई कुछ हिंसात्मक घटनाओं के कारण उनके दिल में भी शान्ति नहीं थी। उन्होंने हिंसा तथा अहिंसा की विवेचना अपने भाषण में जिस सुन्दरता से की; यह देखने ही योग्य है। उन्होंने कहा था—"हिंसा के परिणाम बहुधा विपरीत और भ्रष्ट करने वाले होते हैं। खास कर हमारे देश में तो इससे सत्यानाश हो सकता है। यह बिलकुल सच है कि आज संसार में संगठित हिंसा का ही बोल-बाला है। सम्भव है हमें भी इससे लाभ हो; परन्तु हमारे पास तो संगठित हिंसा के लिए न सामग्री है, न तैयारी; और व्यक्तिगत अथवा स्फुट हिंसा तो निराशा का कबूल करना है। मैं समझता हूँ हममें से अधिक लोग नैतिक दृष्टि से नहीं,

प्रत्युत व्यवहारिक दृष्टि से विचार करते हैं, और यदि हमने हिंसा के मार्ग का परित्याग किया है तो सिर्फ़ इसीलिए किया है कि हमें इसमें कोई सार दिखलाई नहीं देता। स्वतन्त्रता के किसी भी आन्दोलन में जनता का शामिल होना जरूरी है और जनता के आन्दोलन तो शान्त ही हो सकते हैं। हाँ, संगठित विद्रोह की बात अलग है।" स्वाधीनता की परिभाषा करते हुए आगे आपने कहा—"हमारे लिए स्वाधीनता का अर्थ है कि ब्रिटिश प्रभुत्व और ब्रिटिश साम्राज्य से पूर्णतः मुक्त होना। मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि इस प्रकार मुक्त होने के बाद भारतवर्ष विश्व-संघ बनाने के प्रयत्न का स्वागत करेगा और यदि उसे बराबरी का दर्जा मिलेगा तो वह किसी बड़े समूह में शामिल होने के लिए अपनी स्वाधीनता का कुछ हिस्सा छोड़ देने को भी राजी हो जायगा।......जब तक साम्राज्यवाद और उसके साथ लगी हुई सारी खुराफ़ात का अन्त नहीं हो जाता तब तक ब्रिटिश राष्ट्र-समूह में भारतवर्ष को बराबरी का दर्जा मिल ही नहीं सकता।"

ब्रिटिश सरकार द्वारा यदा-कदा किये जाने वाले वायदों और झूठी आयोजनाओं की आलोचना करते हुए आपने कहा था—

"नाम कुछ भी रखिये, असली चीज तो है सत्ता का हाथ में आना। मैं नहीं समझता कि भारतवर्ष को मिलनेवाला किसी भी प्रकार का औपनिवेशिक स्वराज्य हमें ऐसी सत्ता देगा। इस सत्ता की कसौटी यह है कि विदेशी सेना और आर्थिक नियन्त्रण बिलकुल हटा दिये जायँ इसलिए हमें इन्हीं दोनों पर जोर देना चाहिये, फिर सब कुछ अपने आप मिल जायगा।"

स्वाधीनता का संकल्प-वाक्य

राष्ट्र-पति नेहरू के आदेशानुसार २६ जनवरी १६३० को समस्त देश में स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता के आदर्श के रूप में इसे ग्रहण किया। १६२६ की कांग्रेस में स्वाधीनता का जो संकल्प-वाक्य तैयार हुआ था उसका भाव इस प्रकार है—

हम विश्वास करते हैं कि राष्ट्रीय जीवन को पूर्ण समुन्नत करने का हमें सुयोग मिले। इसके लिए भारतीयों को अन्यान्य जातियों की भाँति स्वाधीनता अपने श्रम से प्राप्त धन तथा जीवन-धारण के लिए आवश्यक सुख-सुविधायें प्राप्त करने का अधिकार है। हम यह भी विश्वास करते हैं कि यदि कोई राष्ट्र-शक्ति जनता को इस अधिकार से वंचित करे और उसके ऊपर अत्याचार करे तो जनता को उसका विलोप-साधन करने का अधिकार है। ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों को केवल स्वाधीनता से ही वंचित नहीं किया है; प्रत्युत जन-साधारण के शोषण के ऊपर अपनी नींव प्रतिष्ठित की है और भारतवर्ष का आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से ध्वंस-साधन किया है, इसलिए हम यह विश्वास करते हैं कि भारत के लिए ब्रिटिश सम्बन्ध विच्छिन्न करके पूर्ण स्वराज्य एवं पूर्ण स्वाधीनता-लाभ करना नितान्त आवश्यक है।"

स्वाधीनता के इस अमर संकल्प-वाक्य में स्वाधीनता लाभ की अनिवार्य आवश्यकता के सम्बन्ध में जो युक्तियाँ दी गई हैं वे इतनी स्पष्ट हैं कि उनके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की टीका-टिप्पणी करना निरर्थक है। वस्तुत: देखा जाय तो एक जाति को दूसरी जाति पर राज्य करने का कोई भी नैतिक अधिकार नहीं हो सकता, चाहे वह शासन कितना ही उदारतापूर्ण क्यों न हो।

सत्याग्रह के पूर्व

१९२२ से लेकर १९२९ तक कांग्रेसी-सदस्य कौंसिलों में रहे और उन्होंने अड़ङ्गा और अर्ध अड़ङ्गा नीतियों पर कार्य करके देखा। उनके द्वारा अनेक अवसरों पर सरकार को बड़ी करारी हार भी हुई। फिर भी कोई महत्व-पूर्ण काम नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने कौन्सिल-प्रवेश का कार्य-क्रम उस समय के लिए रक्खा था, जब देश में बाहर कार्य करने के लिए विशेष कार्य नहीं था। पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा के बाद स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ। साइमन कमीशन की नियुक्ति, राउण्ड टेबल कान्फ्रेन्स की व्यवस्था आदि में जनता की अभिलाषाओं आकांक्षाओं

की अवहेलना करके सरकार ने बड़ी भीषण परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। सारा देश सरकार के इस व्यवहार से क्षुब्ध हो उठा था। कांग्रेस एक जबरदस्त आन्दोलन छेड़ने की बात सोचने लगी। १७ फरवरी १६३० की कार्य-समिति की बैठक में निश्चय किया कि अब सत्याग्रह होगा ही; किन्तु अखिल भारतीय पैमाने पर सत्याग्रह की सिफारिश कार्य-समिति ने नहीं की। गान्धीजी व उनके साथियों को ही कार्य समिति ने यह आदेश दिया कि वे आन्दोलन छेड़ सकते हैं। गान्धीजी ने इस आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण कर लिया और वे इस आन्दोलन की रूप-रेखा सोचने लगे। इसी बीच बाहर के आन्दोलन को सबल बनाने के लिए महात्माजी ने उन सब लोगों को, जो कौन्सिल में थे बाहर निकल आने का आदेश दिया। तदनुसार सब बाहर निकल आये। इन लोगों के असेम्बलियों से त्याग-पत्र देकर बाहर आते समय कौन्सिल के अध्यक्ष ने छोड़कर जाने वाले व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए कहा—"आप सब मुझसे हाथ मिलाते जाइये, कौन जाने हममें से कौन-कौन यहाँ रहेंगे।" कांग्रेस-दल के पीछे-पीछे मालवीयजी के दल ने भी कौन्सिल की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिये।

सत्याग्रह-संग्राम

उक्त आन्दोलन के उपयुक्त सब उपादान उपस्थित हो गये थे। महात्माजी ने भी इस बीच में अपना कार्य-क्रम निर्धारित कर लिया। सब तैयारियों के साथ १४ से १६ फरवरी १६३० तक साबरमती आश्रम में, जहाँ महात्माजी का वास था, कांग्रेस कार्य-समिति की बैठकें होती रहीं और भावी आन्दोलन की पूरी तैयारी हो गई। गान्धीजी की योजना सदा उनकी अन्तः प्रेरणा से बनती है, मस्तिष्क के भावना-हीन, हानि-लाभ-दर्शक तर्क से नहीं। उनका गुरु और मित्र उनका अन्तःकरण ही रहा है। गान्धीजी की शुद्ध दिव्य दृष्टि का लोहा सभी ने माना और एक स्वर से, मत-भेद रखते हुए भी, सबने गान्धीजी की नमक-सत्याग्रह की योजना का स्वागत किया। अपनी योजना से

अवगत कराने के लिए २ मार्च को महात्माजी ने एक ऐतिहासिक पत्र वायसराय के नाम लिखा। इस पत्र को डाक से न भेजकर किसी दूत के द्वारा भेजना ही वे अधिक उपयुक्त समझते थे। इस दौत्य-कर्म के लिए किसी और भारतीय को न चुन कर एक अंग्रेज़ को ही चुना, जिसका नाम 'रेजिनाल्ड रेनाल्ड' था। 'नमक-क़ानून' तोड़ने के आन्दोलन का नेतृत्व करने की अभिलाषा प्रकट करते हुए गान्धीजी ने उस पत्र में लिखा था—"भद्र अवज्ञा शुरू करने और उन आपत्तियों का सामना करने जिनसे मैं अब तक डर रहा था, के पहले मैं चाहता हूँ कि आपके द्वारा कोई इसका सरल मार्ग निकल आय। इस आन्दोलन के प्रारम्भ करते समय जितना प्रेम एक भारतीय के लिए है, उतना ही किसी अंग्रेज़ के लिए भी। मैं आत्म-पीड़न से अंग्रेज़ों का हृदय-परिवर्तित करना चाहता हूँ न कि उनका विनाश। आपको मालूम होना चाहिए कि आप लोगों का मैं नुकसान नहीं चाहता; बल्कि भारत की सेवा करना चाहता हूँ।"

ग्यारह शर्तें

सत्याग्रह न करने के लिए महात्मा जी ने कम से कम ग्यारह शर्तें उस पत्र में लिखी थीं। साथ ही यह भी लिख दिया था कि यदि १२ मार्च १९३० से पहले-पहले मेरे पत्र का सन्तोषजनक उत्तर आपकी ओर से न आया तो मैं सत्याग्रह प्रारम्भ कर दूँगा। पत्र में लिखी शर्तें इस प्रकार हैं—१—सम्पूर्ण मादक द्रव्यों का निषेध, २—विनिमय की दर १६ पैंस पर स्थापित करना, ३—मालगुजारी में ५० प्रतिशत कमी, ४—नमक-कानून को रद्द करना, ५—सैनिक-व्यय में ५० प्रतिशत कमी, ६—सरकारी नौकरों की तनख्वाह में ५० प्रतिशत कमी, ७—विदेशी कपड़े के आयात पर निषेध-कर लगा दिया जाय, ८—भारतीय समुद्र-तट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय, ९—हत्या या हत्या के प्रयत्न में साधारण ट्रिब्यू-नलों द्वारा सजा पाये हुए व्यक्तियों के अतिरिक्त समस्त राजनीतिक क़ैदी छोड़ दिये जाँय, सारे राजनीतिक मुकद्मे वापिस ले लिये जायँ, १२४

(अ) धारा और १८१८ का तीसरा रेगुलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयों को देश में वापिस आ जाने दिया जाय, १०—खुफिया पुलिस उठा दी जाय अथवा उस पर जनता का नियन्त्रण कर दिया जाय, ११—आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने में परवाने दिये जायँ और उन पर जनता का नियन्त्रण रहे (इन शर्तों को पेश करते हुए गान्धीजी ने लिखा था कि 'वायसराय साहब हमारी इन तुच्छ शर्तों को पूरा करके ही हमारे असन्तोष एवं क्षोभ को दूर कर दें। तब उन्हें कहीं सत्याग्रह की चर्चा भी सुनने को नहीं मिलेगी और भारतवासी किसी भी आने वाले सम्मेलन में सहर्ष भाग लेंगे, जहाँ उन्हें अपनी अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।' किन्तु गान्धीजी के इस पत्र पर नौकरशाही ने अपनी ऐंठ में कुछ भी विचार नहीं किया और लार्ड इरविन ने एक मामूली-सा जवाब भेज दिया कि 'भारत सरकार को गान्धीजी के इस निर्णय से सख्त अफ़सोस है। क्योंकि इस नीति को काम में लाने से भारत में सार्वजनिक अशान्ति और कानून-भङ्ग की भावना ही फैलेगी।'

दांडी-यात्रा

जब पत्र का जवाब असन्तोषजनक मिला तो गान्धी जी ने बड़े दर्द भरे शब्दों में कहा था "मैंने घुटने टेककर वायसराय से रोटी की याचना की थी, परन्तु उन्होंने उसके बदले में पत्थर दे दिया।" अब इस परिस्थिति के बाद दूसरा कोई चारा न था। १२ मार्च को गान्धीजी ने अपने आश्रम के ७९ साथियों को लेकर दांडी-यात्रा प्रारम्भ की। यह विद्रोहियों का प्रस्थान था। इधर यह कूँच जारी था, उधर ग्राम-कर्मचारियों के धड़ाधड़ त्याग-पत्र आ रहे थे। महात्माजी ने दांडी पर पहुँच कर नमक-कानून, भङ्ग करने का निश्चय किया था। महात्माजी ने यह यात्रा पैदल की थी और यह दूरी उन्होंने २४ दिन की कठिन यात्रा के बाद तय कर पाई थी। मार्ग में भीड़ इकट्ठी होती और वे लोगों को विदेशी वस्त्र छोड़ने, नशा-निषेध और सरकार से असहयोग करने का उपदेश देते। सबसे अधिक वे इस बात पर जोर देते कि सब हालत में

अहिंसात्मक रहना आवश्यक है। गान्धीजी की इस अपील का समुचित असर भी पड़ा।

नमक-कानून-भङ्ग

५ अप्रैल की रात को वह सेना रण-स्थल पर पहुँची। उपवास और प्रार्थना के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल गान्धीजी समुद्र के किनारे गये उनके साथ-साथ सत्याग्रहियों की भीड़ भी थी। ठीक आठ बजे उन्होंने स्नान किया और समुद्र में से मुट्ठी भर नमक छान लिया। इतने बड़े साम्राज्य के साथ मुट्ठी भर नमक छानकर लड़ाई लड़ने की इस तैयारी का बहुत जगह उपहास किया गया। भारतीय स्वाधीनता के दुश्मनों ने गान्धीजी की इस नीति की खिल्ली उड़ाई। किन्तु थोड़े ही दिनों में उन्हें मालूम हो गया कि उनका हँसना गलत था। गान्धीजी के नमक-कानून-भङ्ग करते ही समस्त देश में नमक-कानून-भङ्ग की लहर दौड़ गई और हजारों आदमी गिरफ्तार कर लिए गये। इससे समस्त देश में आन्दोलन ने विकराल रूप धारण कर लिया; किसी ने ऐसी कल्पना भी न की थी। शराब की दुकानों, विदेशी-वस्त्रों आदि पर पिकेटिंग, नमक बनाने के स्थान पर आयोजन इन सब कामों में जनता का अपूर्व एवं अदम्य उत्साह देखकर लोग दङ्ग रह गये।

देशव्यापी आन्दोलन का यह रूप देखकर सरकार भी पागल हो उठी और उसने जोरों से दमन चक्र चलाया। लोगों ने धड़ाधड़ सरकारी नौकरियों से त्याग- पत्र देकर सत्याग्रह संग्राम के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने प्रारम्भ कर दिये। अहमदाबाद में हुई कांग्रेस महासमिति की बैठक में २१ मार्च १९३० को सत्याग्रहियों के लिए एक ही प्रकार का प्रतिज्ञा-पत्र बनाना वाञ्छनीय समझा गया और गान्धीजी की अनुमति से तभी यह प्रतिज्ञा-पत्र बनाया गया था। वह इस प्रकार था—

"१—राष्ट्रीय महासभा ने भारतीय स्वाधीनता के लिए सविनय अवज्ञा का जो आन्दोलन खड़ा किया है, उसमें मैं शरीक होना चाहता हूँ।

२—मैं कांग्रेस के शान्त एवं उचित उपायों से भारत के लिए पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति के ध्येय को स्वीकार करता हूँ।

३—मैं जेल जाने को तैयार और राजी हूँ और इस आन्दोलन में और भी जो कष्ट और यातनायें मुझे दी जायेंगी, उन्हें मैं सहर्ष सहन करूँगा।

४—जेल जाने की हालत में मैं काँग्रेस कोष से अपने परिवार के निर्वाह के लिए कोई आर्थिक सहायता नहीं मागूँगा।

५—मैं आन्दोलन के संचालकों की आज्ञाओं का निर्विवाद रूप से पालन करूँगा।"

गान्धीजी की इस यात्रा का देश की जनता पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा था। इस यात्रा के सम्बन्ध में 'बाम्बे क्रॉनिकल' ने इस प्रकार लिखा था—"इस महान् राष्ट्रीय घटना से पहले, उसके साथ-साथ और बाद में जो दृश्य देखने में आये वे इतने उत्साहपूर्ण, शानदार और जीवन फूँकने वाले थे कि वर्णन नहीं किया जा सकता। इस महान् अवसर पर मनुष्यों के हृदय में देश-प्रेम की जितनी प्रबल धारा बह रही थी उतनी पहले कभी नहीं बही थी। यह एक महान् आन्दोलन का महान् प्रारम्भ था, और निश्चय ही भारत की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के इतिहास में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहेगा।"

दमन का दौर-दौरा

इस देश व्यापी आन्दोलन के कारण सरकार आतंकित हो उठी और देश में इस छोर से उस छोर तक आग-सी लग गई। सारे बड़े-बड़े शहरों में लाखों की उपस्थिति में विराट सभायें हुईं। कराची, पूना, पेशावर, कलकत्ता, मद्रास और शोलापुर की घटनाओं ने नया अनुभव कराया और दिखा दिया कि इस सभ्य सरकार का एकमात्र आधार अहिंसा है। २३ अप्रैल को बङ्गाल आर्डिनैन्स फिर जारी कर दिया गया और वायसराय [illegible] १९१० के प्रेस-एक्ट को फिर चालू कर दिया। [illegible] के 'यंग इन्डिया' नवजीवन

पत्रों को काफी क्षति उठानी पड़ी। अन्य पत्रों को इसका शिकार होना पड़ा और अधिकांश पत्रों को जमानतें दाखिल करनी पड़ीं।

चारों ओर गिरफ्तारियाँ शुरू होने से जनता में साहस और उत्साह हिल्लोलित हो उठा। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों के अन्दर एक लाख से अधिक सत्याग्रही वीर जेलों की चहार दीवारी के भीतर बन्द कर दिये गये। फिर अचानक ५ अप्रैल की रात को १ बजकर १० मिनट पर महात्मा गांधी को गिरफ्तार करके मोटर द्वारा यरवदा जेल पहुँचाया गया। उनकी गिरफ्तारी के बाद पं० जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू एवं सरोजिनी नायडू आदि नेता गिरफ्तार कर लिये गये। फिर भी आन्दोलन में कोई कमी नहीं आई। रक्त-बीज की भाँति सत्याग्रही वीरों की सेना दुगुनी-चौगुनी बढ़ती गई। गांधीजी के गिरफ्तार होते ही बड़ोदा के चीफ़ कोर्ट के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश अब्बास तैय्यबजी उनके उत्तराधिकारी हुए। वे भी गिरफ्तार कर लिए गए। इस प्रकार सब नेता गिरफ्तार होते गए और सत्याग्रह ज़ोर पकड़ता गया। अन्त में इमाम साहब के नेतृत्व में पन्द्रह हज़ार स्वयं-सेवकों ने धरसना के नमक डिपो पर हमला बोल दिया। जब सरकार को केवल गिरफ्तारियों से काम चलता न दीख पड़ा तो उसने लाठियाँ और गोलियाँ चलवाईं। धरसना के धावे में नमक तो न मिल सका और न गोदाम पर ही दख़ल किया जा सका; किन्तु लोगों में इससे नमक-क़ानून तोड़ने की अपार शक्ति पैदा हुई।

इसी प्रकार देश में दमन बढ़ता गया। लार्ड इरविन ने अपनी सत्ता का पेंच कसना शुरू किया। युद्ध के आह्वान को भारत की वीर लल-नायें भी न टाल सकीं और वे मैदान में निकल आईं। उन्होंने मैदान में आते ही शराब और विदेशी कपड़ों की दूकानों पर धरना देने का कार्य अपने हाथ में ले लिया। सब नेताओं के एक-एक करके गिरफ्तार होने के बाद सरदार पटेल अपनी ४ मास की पहली जेल-यात्रा से वापिस लौटे। उन्हें कांग्रेस का स्थानापन्न अध्यक्ष बना दिया गया। उन्होंने जेल से लौटते ही बम्बई और गुजरात में कार्य करना शुरू

किया। उनके भाषणों से जनता को एक नई शक्ति और एक नया उत्साह मिला। कांग्रेस को ग़ैरक़ानूनी घोषित किये जाने के विरोध में हुई सभा में सरदार पटेल ने जो भाषण दिया था वह अविस्मरणीय है—उन्होंने कहा था—

"आज से भारतवर्ष का हर एक घर कांग्रेस का दफ़्तर और हर एक व्यक्ति कांग्रेस होना चाहिए।"

समझौते की बातचीत

इस प्रकार एक ओर सत्याग्रह का यह आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था दूसरी ओर लन्दन में भारत-सरकार अपने कुछ पिट्ठुओं को लेकर 'गोलमेज़ परिषद्' का स्वाँग रच रही थी। किन्तु कांग्रेस के सहयोग के बिना 'गोलमेज़ परिषद्' अधूरी-सी जान पड़ती थी। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इस बात को जानते थे। अतः उस ग़ैरक़ानूनी घोषित की हुई संस्था से भी समझौता करने के लिए वह प्रयत्न करने लगे। उन्हें यह दृढ़ विश्वास था कि कांग्रेस के सहयोग के बिना जो विधान तैयार किया जायगा, वह भारत में चल नहीं सकता। इस स्थिति को खयाल में रखते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री रैमज़े मैकडानल्ड ने एक बहुत ही सुन्दर भाषण दिया, जिसमें उन्होंने यह निश्चय प्रकट किया कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस को शामिल करने और उसकी बातों पर पूरी तरह हम-दर्दी के साथ विचार करने के लिए तैयार है। इसी खयाल से वायस-राय को संकेत किया गया कि वे कांग्रेस-कार्य-समिति के प्रायः सभी सदस्यों को रिहा करदें, जिससे इस वक्तव्य पर वे सब एकत्रित होकर विचार कर सकें। इस आदेश के अनुसार कार्य-समिति को रिहा कर दिया गया। इधर कार्य-समिति की बैठक इलाहाबाद में हो रही थी और दूसरे वर्ष की लड़ाई की योजना तैयार की जा रही थी। कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई होने से पूर्व काम चलाऊ कार्य-समिति सत्याग्रह-संग्राम को कहीं आगे न बढ़ा दे, इसलिए लन्दन सर तेज बहादुर सप्रू और श्रीनिवास शास्त्री ने इन प्रस्तावों को स्थगित तथा अप्रकाशित रखने के लिए तार दिया, उनके तार की उचित क़द्र की

गई, बाद को वे स्वयं पहुँचे। अन्य नेताओं की रिहाई भी हो गई, किन्तु केवल प्रधान मन्त्री और वायसराय के वक्तव्यों से खुलासा होता न दीख पड़ा। रूबरू बातचीत करने का निश्चय हुआ। चूंकि सरकार बिना शर्त कार्य-समिति के सदस्यों को रिहा करके आपस में मिलने का पहला क़दम अपने आप बढ़ा चुकी थी, अतः गांधीजी ने अपनी ओर से दूसरा क़दम बढ़ाना उचित नहीं समझा। परिणाम गांधीजी ने वायसराय को भेंट करने के लिए लिखा। वायसराय ने तार देकर मिलने की स्वीकृति तथा मिलने की इच्छा प्रकट की। बस फिर क्या था, गांधीजी फ़ौरन दिल्ली के लिए चल पड़े।

गान्धी-इरविन पैक्ट

१६ फरवरी १६३१ ई० को दिल्ली में महात्मा गांधी और तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन में समझौते की बातचीत हुई और ४ मार्च को गान्धी-इरविन पैक्ट हुआ। इसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस क़ानून-भङ्ग आंदोलन तथा पिकेटिंग आदि स्थगित करदे और सरकार समस्त राजनीतिक बन्दियों को रिहा करदे। एक शर्त यह भी सरकार ने स्वीकार की कि जो लोग अपने व्यवहार के लिए (बेचने के लिए नहीं) नमक तैयार करें उन्हें उसे बनाने से न रोका जाय। इस समझौते के बाद कांग्रेस ने गोलमेज़-परिषद में भाग लेने का विचार किया।

लाहौर-कांग्रेस के अवसर पर सर्दी बहुत अधिक थी, अतः कांग्रेस-कार्य समिति ने यह निश्चय किया था कि दिसम्बर में कांग्रेस के अधिवेशन न करके फरवरी या मार्च में किये जायँ। इस निर्णय के अनुसार सन् १६३० में कांग्रेस न हो सकी थी। कांग्रेस का अगला अधिवेशन १६३१ के मार्च महीने में होने वाला था। परन्तु सरकार के दमन और आंदोलन की प्रबलता के कारण उसे स्थगित रखना पड़ा था। फिर जब 'गांधी-इरविन पैक्ट' हो गया तो कराची में सरदार वल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, जिसमें कांग्रेस ने यह निर्णय

किया कि उसकी ओर से महात्मा गांधी एक मात्र प्रतिनिधि बनकर गोलमेज-परिषद् में भाग लें।

यह सब तो हुआ, परन्तु अधिकारियों के व्यवहार में विशेष अन्तर नहीं आया। 'गांधी-इरविन-पैक्ट' द्वारा जो शर्तें सरकार द्वारा स्वीकृत की गई थीं, उनके अनुसार काम न हो रहा था। महात्माजी ने इस बात की ओर वायसराय का ध्यान आकर्षित किया। परन्तु उस पर भी सुनवाई नहीं हुई। तब उन्होंने निश्चय किया कि ऐसी अवस्था में वे 'गोल मेज-परिषद्' में भाग न लेंगे। उधर 'गोल मेज-परिषद्' में विलम्ब हो रहा था। अतः वायसराय ने 'स्पेशल ट्रेन' से महात्मा गान्धीजी को शिमला बुलाया और उनकी शिकायतें दूर करने का आश्वासन दिया। तब महात्माजी लन्दन जाने के लिए तैयार हुए और तुरन्त स्पेशल ट्रेनों आदि का प्रबन्ध कर और जहाज को छूटने के समय से काफी अधिक देर तक रोककर महात्मा गान्धी को इंग्लैंड जाने की सुविधा दी गई। वहाँ जाकर उन्हें बड़ी निराशा हुई। 'गोल मेज-परिषद्' में साम्प्रदायिक समस्या को टट्टी बनाकर उसकी ओट में शिकार करने का ब्रिटिश राज-नीतिज्ञों ने स्वाँग रचा। इसलिए महात्माजी को वहाँ से खाली हाथ लौटना पड़ा। साम्प्रदायिक समस्या के अतिरिक्त अल्प-संख्यकों का संरक्षण तथा देशी राज्यों का सवाल आदि हिन्दुस्तान की आजादी में जितने भी रोड़े हो सकते थे, सबको उनके सामने पेश किया गया। गांधी जी ने इस सुझाव का जो तरीका पेश किया, उस पर ब्रिटिश सरकार ने कोई भी ध्यान नहीं दिया। लीगी नेता भी राजी न हुए।

सङ्घर्ष की नींव

दमन-चक्र

इस बीच में भारत का वायसराय बदल गया। लार्ड इरविन के स्थान पर लार्ड विलिंगडन वायसराय होकर आए। विलिंगडन साहब की नीति अत्यन्त उग्र थी। गांधीजी का लन्दन से रवाना होना था कि लार्ड विलिंगडन की सरकार ने भारत में नादिरशाही मचानी शुरू की थी। औचित्य, अनौचित्य की तनिक भी परवा न करके वह राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचल डालने का प्रयत्न कर रही थी। अभी गान्धीजी जहाज पर थे कि सीमान्त गान्धी हवालात में ठूँस दिये गये। युक्त-प्रांत, सीमा-प्रान्त, बंगाल और गुजरात में दमन-चक्र बड़े ही वेग से चला। सब जगह आर्डिनेन्स-राज्य था। इसी दमन के बीच २८ दिसम्बर १९३१ को महात्मा गान्धी लन्दन से वापिस आ गये और वे यहां की दशा देखकर अवाक् रह गये। इसी बीच पं० जवाहरलाल नेहरू तथा तशद्दुक अहमद खाँ शेरवानी गान्धीजी के बम्बई उतरते ही गिरफ्तार कर लिए गये। ये लोग गान्धीजी की अगवानी करने एवं कार्य-समिति की बैठक में सम्मिलित होने गये थे। गान्धीजी इस स्थिति से अत्यन्त उद्विग्न तथा चिन्तित हुए। उन्होंने शीघ्र ही वायसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें समझौते शर्तों के सरकार के द्वारा भंग किये जाने का उल्लेख था। परन्तु लार्ड विलिंगडन ने न तो इस पत्र का ही कोई सन्तोषजनक उत्तर दिया और न गांधीजी को मुलाकात करने की अनुमति दी। जिस व्यक्ति से मुलाकात करने की कोशिश में स्पेशल ट्रेनों का प्रबंध किया था और जिसे 'गोल मेज-परिषद्' में भेजने के लिए जहाज को [illegible]

के बाद तक रोक रखा गया था, उसी व्यक्ति को प्रार्थना करने पर भी लार्ड विलिंगडन ने मिलने का मौका नहीं दिया। गान्धीजी जनता अथवा सरकार की नब्ज़ पहचानने में कभी देर नहीं करते। वे ताड़ गये कि लार्ड विलिंगडन की सरकार स्वाधीनता-आन्दोलन को कुचलने पर तुली हुई है। शीघ्र ही कार्य-समिति की बैठक बुलाई गई और उसमें सीमान्त, बङ्गाल और यू० पी० में फैले हुए अत्याचार के प्रति असन्तोष प्रकट किया गया। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि यदि भारत-सरकार इस अस्वाभाविक अवस्था का अन्त नहीं करती है तो लाचार होकर कांग्रेस को फिर १६३० का स्थगित सत्याग्रह जारी करना पड़ेगा। इस प्रस्ताव की प्रति लार्ड विलिंगडन के पास भी भेज दी गई। विलिंगडन साहब तो पहले से ही तैयार बैठे थे। प्रस्तावों की पहुँच मात्र की रसीद कार्य-समिति के पास भेज दी गई और इधर कार्य-समिति के सदस्य अपने अपने मकानों को चले और उधर वायसराय-भवन से सबके नाम वारन्ट निकले। ४ जनवरी १६३२ को गान्धीजी तथा कांग्रेस के सभापति सरदार वल्लभभाई पटेल गिरफ्तार कर लिए गये। और सदस्य भी ऐसे ही जहाँ पाये गये वहीं पकड़ लिए गये। समस्त देश की कांग्रेस-कमेटियाँ गैर कानूनी घोषित कर दी गई। कांग्रेस-महासमिति तथा कार्य समिति गैरकानूनी करार दे दी गई। ऐसा करने का कारण यह था कि लार्ड विलिंगडन की नीति यह थी कि कुछ सप्ताहों में ही सत्याग्रह-आन्दोलन कुचल दिया जाय। यह अफ़वाह उन दिनों ज़ोरों पर थी कि विलिंगडन साहब कुल ६ सप्ताहों में ही भारतीय आन्दोलन को कुचल देने और नेस्त-नाबूद कर देने का बीमा लेकर आये हैं। किन्तु भारत में आने पर उनका अनुमान गलत निकला। ६ सप्ताह के बजाय महीनों लग गये किन्तु आन्दोलन न दब सका। नौकरशाही अपनी असफलता से खीझकर अपनी शान्ति एवं शीलता खो बैठी और देहातों में स्वयं सेवकों पर लाठी चार्ज होने लगा। भेड़-बकरियों से भी अधिक बुरी तरह सत्याग्रहियों को पीटा गया। उन्हें गिरफ़्तार न करके घायल कर, सड़कों पर बिछा दिया जाता था। राष्ट्र के अपूर्व साहस,

अनुपम त्याग, असीम कष्ट-सहन और अलौकिक धैर्य का अद्भुत परिचय दिया। लोगों की जायदादें नीलाम की जाने लगीं। गरज़ दमन का कोई भी तरीक़ा उठा न रखा गया और चारों ओर ज़ुल्म का ताण्डव होने लगा और दमन को क़ानून में परिणत कर उसे शासन का स्थिर आधार बना लिया गया।

आन्दोलन फिर भी न रुका

जो परिस्थिति इस भयङ्कर दमन ने उत्पन्न कर दी थी, उस विषम परिस्थिति में कांग्रेस-कार्य-समिति आदि के अधिवेशन सम्भव ही न थे। अतः कांग्रेस के डिक्टेटर नियुक्त करके उनके आदेशानुसार आन्दोलन को चलाने का निश्चय हुआ। प्रत्येक स्थान के लिए ज़िले-ज़िले के डिक्टेटर नियुक्त किये जाते और उनके आदेशानुसार काम होता। अपनी गिरफ़्तारी पर वे डिक्टेटर स्वयं अपने बाद का डिक्टेटर नियुक्त कर जाते थे, इस प्रकार डिक्टेटरों का ताँता बँध रहा था और काम ज़ोरों के साथ हो रहा था। देश के बड़े-बड़े नेताओं के जेल में चले जाने पर भी आन्दोलन न रुका। सभाओं और सार्वजनिक सभाओं आदि में बिना संकोच लाठी-चार्ज होता था और निहत्थी, निरीह जनता बन्दूकों के कुन्दों आदि से मार मारकर तितर-बितर कर दी जाती थी। इन दिनों स्वतन्त्रता-दिवस आदि जो राष्ट्रीय पर्व मनाये गये वे राजनीतिक इतिहास में अमर रहेंगे। लाठियों के प्रहार पर प्रहार सहकर भी जनता अपने इन राष्ट्रीय त्योहारों को मनाती थी।

दिल्ली-अधिवेशन

इस सम्बन्ध में दिल्ली में हुए कांग्रेस के अधिवेशन का उल्लेख करना भी अत्यावश्यक है। यह अधिवेशन अप्रैल १९३२ में पुलिस की बड़ी भारी सतर्कता के बावजूद भी गुप्त रूप से निमन्त्रण भेजकर किया गया था। पुलिस ने मार्ग में बहुत से प्रतिनिधियों का पता लगाकर गिरफ़्तार भी कर लिया था। इस महत्त्वपूर्ण अधिवेशन के सभापति श्री सेठ रणछोड़दासजी थे। पुलिस के कड़े निरीक्षण के होते हुए भी

घन्टाघर के समीप यथानिर्दिष्ट सभा-स्थान पर ५०० के लगभग प्रतिनिधि एक ही समय में एकत्रित हो गये थे। पुलिस इस सन्देह में कि अधिवेशन की जगह का जो ऐलान किया गया है, वह सिर्फ चाल है, प्रतिनिधियों को नई दिल्ली में कहीं तलाश करती रही और कुछ पुलिस एक जगह अकालियों के जुलूस से निबटती रही। उसके घन्टाघर पहुँचने से पूर्व ही सब प्रतिनिधियों ने वहाँ पर एकत्र होकर अपनी कार्यवाही भी शुरू कर दी थी। उसमें कांग्रेस की वार्षिक रिपोर्ट पेश होने के अतिरिक्त चार प्रस्ताव भी स्वीकृत हुए थे। पहले प्रस्ताव में इस बात की ताईद की गई कि पूर्ण स्वाधीनता ही कांग्रेस का लक्ष्य है, दूसरे में सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के फिर से जारी होने का हार्दिक समर्थन किया गया, तीसरे में गान्धीजी के आह्वान पर राष्ट्र ने जो सुन्दर जवाब दिया उसके लिए उसे बधाई दी गई और महात्माजी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास प्रदर्शित किया गया तथा चौथे में अहिंसा में अपने विश्वास की फिर से पुष्टि करते हुए कांग्रेस को, विशेषतः सीमाप्रान्त के बहादुर पठानों को, अधिकारियों की ओर से अधिक-से-अधिक उत्तेजनात्मक करतूतें की जाने पर भी अहिंसात्मक रहने पर बधाई दी गई।

इस दिल्ली-अधिवेशन के मनोनीत सभापति वैसे तो पं० मदनमोहन मालवीय थे; परन्तु उन्हें दिल्ली आते हुए मार्ग में ही गिरफ्तार कर लिया गया था। वैसे उस समय के कांग्रेसी नेताओं में वेही एक ऐसे योग्य पुरुष बचे थे, जो जेल से बाहर थे। अपनी वृद्धावस्था एवं गिरे हुए स्वास्थ्य के बावजूद भी; गोलमेज-परिषद् से लौटने के बाद वे कभी शान्ति से नहीं बैठे और अधिकारियों की ज्यादतियों का पर्दा-फाश करने वाले वक्तव्य पर-वक्तव्य निकाल कर अपने अथक उत्साह एवं अद्भुत शक्ति से कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को प्रोत्साहन प्रदान करते रहे।

कलकत्ता-अधिवेशन

जिन विषम परिस्थितियों में दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था उन्हीं कठिन बन्धनों एवं दिक्कतों में कलकत्ता के एस्प्लेनेड मैदान

में भी श्री मती नेली सेन गुप्त के सभापतित्व में ३१ मार्च १६३३ में कांग्रेस का एक और अधिवेशन हुआ था। वैसे यह अधिवेशन उन दिनों किया गया था, जब सत्याग्रह-आन्दोलन क़रीब-क़रीब शिथिल पड़ गया था; फिर भी उत्साह और आवेग यहाँ दिखलाई पड़ता था, उतना दिल्ली में भी नहीं था। कुल मिलाकर इस अधिवेशन के लिए समस्त प्रांतों से लगभग २२०० प्रतिनिधि चुने गये। इस कांग्रेस का सभापतित्व भी श्री मालवीयजी ने स्वीकार कर लिया था, इससे और श्री मोतीलाल नेहरू के इस अधिवेशन में सम्मिलित होने के संवाद से राष्ट्र का उत्साह बढ़ गया। मालवीयजी को कलकत्ते तक नहीं पहुँचने दिया गया और उन्हें मार्ग में ही आसनसोल स्टेशन पर गिरफ़्तार कर लिया गया। उनकी ट्रेन में ही श्री मोतीलाल नेहरू व डा० सैयद महमूद आदि व्यक्ति थे, वे सबभी उनके साथ ही गिरफ्तार कर लिये गये। कांग्रेस के तत्कालीन कार्य-वाहक सभापति श्री अणे भी कलकत्ता जाते हुए मार्ग में गिरफ़्तार कर लिए गये। कलकत्ते में भी स्वागत-समिति के प्रायः सभी सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। इस कांग्रेस में, स्वाधीनता का लक्ष्य, सत्याग्रह वैध अस्त्र है, सत्याग्रह-कार्यक्रम का पालन, बहिष्कार, ह्वाइट पेपर, गान्धीजी का उपवास, एवं मौलिक अधिकार सम्बन्धी सात प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे।

हरिजन-आन्दोलन

दिल्ली-कांग्रेस और कलकत्ता-कांग्रेस के बीच एक और नया प्रसंग उठा। गोलमेज़-परिषद् के समक्ष गान्धीजी ने कहा था कि हरिजनों के लिए यदि पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की गई तो मैं प्राणों की बाजी लगाकर उसका विरोध करूँगा। उस समय गोलमेज़-परिषद् में प्रधान मन्त्री ने साम्प्रदायिक प्रश्नों को बहुत अधिक महत्व दिया था। इस पर उन्होंने गान्धीजी की बात पर कोई ध्यान न देकर सब फ़ैसले का निपटारा स्वयं ही कर डालने का निश्चय किया था। प्रधान मन्त्री ने गान्धीजी की उक्त उक्ति पर ध्यान नहीं दिया और उन्होंने लोथियन कमेटी को भारत का परिचय प्राप्त करने के लिए भेजा। तभी गान्धीजी

ने प्रधान मन्त्री को सूचित किया था कि यदि सरकार हरिजनों के पृथक निर्वाचन की व्यवस्था करेगी तो वे आमरण उपवास प्रारम्भ कर देंगे।

आमरण उपवास

गान्धीजी कब चूकने वाले थे। जब प्रधान मन्त्री ने गान्धीजी की उक्त चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया तो उन्होंने २८ सितम्बर १६३२ को आमरण उपवास प्रारम्भ कर दिया। इसकी सूचना उन्होंने वायसराय को भी दे दी। परन्तु इस पर ध्यान देना तो दूर रहा प्रधान मन्त्री ने इसी आधार पर महात्मा गान्धी को अस्पर्श्यों का अहित चाहने वाला तक बताने की चेष्टा की। इस भयङ्कर परिस्थिति का आतंक न केवल समग्र भारत में, प्रत्युत, समस्त संसार में छा गया। मित्रों और शत्रुओं-दोनों में चिन्ता हो उठी। महात्माजी का अनशन तुड़वाने के लिए मित्रों के आग्रह पर आग्रह हुए; परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ महात्माजी पर उन आग्रहों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। अब तो एक ही स्थिति शेष रह गई थी। उनका कहना था कि यदि सरकार अपना निर्णय वापिस ले ले तो मैं उपवास भङ्ग कर सकता हूँ।

पूना-पैक्ट

अब यह निश्चय किया गया कि हिन्दुओं में आपसी समझौता करके पृथक-निर्वाचन की धारा को उठाया जाय। हरिजनों के नेता एम० सी० राजा ने भी क़दम आगे बढ़ाया और उन्होंने भी सरकार की इस निर्वाचन-योजना की भर्त्सना की। महामना मालवीय जैसे वृद्ध नेता तुरन्त पूना दौड़ आये। सर तेज बहादुर सप्रू एवं हरिजन-नेताओं के साथ यहीं इस पृथक्-निर्वाचन की समस्या पर पैक्ट हुआ, जिसे 'पूना-पैक्ट' कहते हैं। इस पैक्ट को तत्कालीन प्रधान मन्त्री रैमजे मैकडानल्ड के पास भेजा गया और उन्होंने हरिजनों के पृथक-निर्वाचन की योजना रद्द कर दी और महात्मा गान्धी ने अनशन भङ्ग कर दिया। इसके बाद हरिजन आन्दोलन जोर पकड़ता गया। देश में अनेकों मन्दिर हरिजनों के लिए खोले गए। किन्तु गान्धीजी जिस कार्य को अपने हाथ में लेते

हैं उसे अधूरा नहीं छोड़ते। हरिजन-आन्दोलन पर ये अपनी पूरी ताक़त लगा देना चाहते थे। फलस्वरूप उन्होंने ८ मई १६३३ को फिर २१ दिन का उपवास प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस उपवास का मतलब था हरिजन-आन्दोलन के कार्य-कर्त्ताओं की आत्म-शुद्धि। सरकार इस उपवास से पूर्व ही गान्धीजी को कुछ शर्तों के साथ रिहा करने की बात सोच रही थी, परन्तु जब उन्होंने किसी भी शर्त पर छूटने से सर्वथा इन्कार कर दिया तो अन्त में विवश होकर गान्धीजी को सरकार ने उसी दिन रिहा कर दिया जिस दिन वे उपवास प्रारम्भ करने वाले थे।

जेल से रिहा होकर वे सीधे पूना गये। अतएव हिन्दुओं की जो सम्मिलित सभा मालवीय जी आदि के प्रबन्ध से बम्बई में हो रही थी, वह भी सुविधा के विचार से पूना में की गई। वहाँ कोई ४-५ दिन तक सभा होती रही और अन्त में सर्व श्री मदनमोहन मालवीय, डॉ० अम्बेडकर, श्री निवास शास्त्री, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, तेजबहादुर सप्रू, एम० आर० जयकर, घनश्यामदास बिरला, एम० सी० राजा, सरदार पटेल अमृतलाल ठक्कर, राजेन्द्रप्रसाद, हृदयनाथ कुँजरू एवं श्रीमती सरोजनी नायडू आदि नेताओं ने मिलकर एक योजना तैयार की, जिसे सब दलों ने स्वीकार कर लिया। यह योजना २४ सितम्बर १६३२ को स्वीकृत हुई थी जो भारत के राजनीतिक इतिहास में 'पूना-पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस पैक्ट में दलित जातियों के पृथक् निर्वाचन वाली धारा हटा देने का अनुरोध था।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

क्योंकि सरकार ने शुद्ध हरिजन-आन्दोलन की भावना से प्रेरित होकर ही गान्धीजी को रिहा किया था, इसलिये एक सत्याग्रही के नाते उन्होंने इस रिहाई के बाद किसी भी राजनीतिक कार्य-क्रम में भाग लेना उचित न समझा। साथ ही उनके मस्तिष्क में यह बात घर कर गई कि देश अब युद्ध के लिये सन्नद्ध नहीं है और सामूहिक सत्याग्रह इस समय नहीं चल सकता। अतः उपवास की अवधि पूरी होते ही उन्होंने सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया और व्यक्तिगत सत्याग्रह की योजना तैयार

की। अपनी इस योजना के मुताबिक़ गान्धीजी ने बम्बई सरकार को सूचित किया कि वे एक अगस्त को अपने आश्रम के ३३ साथियों के साथ रास की यात्रा करेंगे और वहीं से सत्याग्रह शुरू करेंगे। गान्धीजी ने अपने इस व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रारम्भ अपने पास की मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु के परित्याग से किया। इस प्रकार उन्होंने उस कष्ट में भाग लेने की चेष्टा की, जिसे आन्दोलन के दौरान में हजारों ग्रामीणों ने सहा था। उन्होंने साबरमती आश्रम तोड़ दिया और आश्रम के निवासियों को सारे काम छोड़ कर युद्ध में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने सारा आश्रम खाली कर दिया और उसकी चल सम्पत्ति को कुछ संस्थाओं को सार्वजनिक उपयोग के लिए दे दिया।

रास की यात्रा

१ अगस्त १९३३ को गान्धीजी ने रास नामक गाँव की यात्रा करने का निश्चय किया। परन्तु एक दिन पूर्व ही उन्हें अपने ३४ आश्रमवासियों सहित गिरफ्तार कर लिया गया। गान्धीजी ४ अगस्त को छोड़ दिए गये और उन्हें यरवड़ा गाँव की सीमा छोड़कर पूना जाकर रहने का नोटिस दिया गया। इस आज्ञा की गान्धीजी ने अवहेलना की और वे फिर गिरफ्तार करके १ वर्ष के लिए जेल भेज दिये गये। उनकी गिरफ्तारी और सजा के बाद ही समस्त भारत में व्यक्तिगत सत्याग्रह छिड़ गया और पहले ही सप्ताह में सैकड़ों कार्य-कर्त्ता गिरफ्तार हो गये। कांग्रेस के तत्कालीन कार्य-वाहक अध्यक्ष श्री अकोला से यात्रा करते समय अपने १३ साथियों के साथ १४ अगस्त को गिरफ्तार कर लिये गये और उसके बाद उनके उत्तराधिकारी सरदार शार्दूलसिंह कवीशर की बारी आई। परन्तु उन्होंने अपनी गिरफ्तारी से पूर्व यह आज्ञा जारी की कि कार्य-वाहक अध्यक्ष और डिक्टेटरों की नियुक्त का सिलसिला तोड़ दिया जाय, जिससे युद्ध सचमुच व्यक्तिगत सत्याग्रह का रूप धारण करले। गान्धीजी ने जो मार्ग दिखाया था, उस पर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देश भर के कांग्रेस-कार्यकर्त्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियों के अटूट ताँते ने युद्ध को जारी रक्खा।

गान्धी और नेहरू की रिहाई

सरकार ने गान्धीजी को वे सुविधाएँ देने से सर्वथा इनकार कर दिया जो उसने उन्हें मई में उनकी रिहाई से पूर्व दी थीं। अतएव अब दुबारा गिरफ्तारी के थोड़े दिन बाद ही उन्हें फिर अनशन प्रारम्भ करना पड़ा। सरकार अड़ी रही। परन्तु जब उनकी अवस्था चिन्ताजनक हो गई तो उन्हें अनशन के पाँचवें दिन अर्थात् २० अगस्त को पूना के ससून अस्पताल में कैदी की हैसियत से पहुँचा दिया गया। इतने पर भी जब उनकी अवस्था न सुधरी और सरकार को उनके प्राण संकट में दीखे तो उन्हें बिना शर्त के ही रिहा कर दिया। इस अनपेक्षित स्थिति ने, समय के पूर्व की गई रिहाई ने गान्धीजी को बड़े असमंजस में डाल दिया और उन्होंने अपनी सजा की अवधि की समाप्ति तक, ३ अगस्त १६३४ तक, मर्यादित आत्म-संयम से काम करने का निश्चय किया। साथ ही अपने जीवन का अधिकांश समय हरिजन-आन्दोलन में ही लगाने का भी उन्होंने संकल्प किया।

इधर पं० जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू का स्वास्थ्य चिन्ताजनक था। अतएव युक्त प्रान्त की सरकार ने उन्हें उनकी सजा की अवधि पूर्ण होने से पहले ही रिहा करने का निश्चय किया, जिससे वे अपनी माता की घोर रुग्णावस्था में उनके पास रह सकें। फलतः ३० अगस्त को नेहरूजी छोड़ दिये गये। उनकी माताजी का स्वास्थ्य सुधरते ही वे सीधे पूना पहुँचे, जहाँ गांधीजी अपना स्वास्थ्य ठीक कर रहे थे। वहाँ पर देश की अवस्था और प्रस्तुत कार्य-क्रम के सम्बन्ध में ही उनका वार्त्तालाप हुआ। इस बातचीत के परिणामस्वरूप दोनों में पत्र-व्यवहार भी हुआ, जिसमें जनता के आगे मौजूदा कार्य-क्रम के सम्बन्ध में दोनों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये थे।

हरिजन दौरा

अपनी बीमारी में रिहाई होने के बाद से महात्मा गान्धी ने हरिजन-आन्दोलन को आगे बढ़ाने का निश्चय कर लिया था। नवम्बर

१९३३ में उन्होंने समस्त देश का दौरा किया। इस दौरे में उन्होंने लगभग ८ लाख रुपया हरिजनों के उत्थान के लिए एकत्र किया, जो उस समय की व्यापारिक मन्दी के देखते हुए एक भारी रकम थी। इस दौरे के सम्बन्ध में एक दो विशेष घटनायें उल्लेखनीय हैं। एक तो २५ जून १९३४ को पूना में किसी अज्ञात व्यक्ति ने किसी दूसरे व्यक्ति की मोटर पर महात्मा गान्धी की मोटर समझ कर बम फेंका, जिससे कई व्यक्ति घायल हुए। दूसरी घटना अजमेर में हुई। वहाँ के पं० लालनाथ का किसी ने सिर फोड़ दिया। वे महात्मा गान्धी के हरिजन-आन्दोलन के प्रबल विरोधी थे। अन्तिम दुर्घटना का समस्त दोष महात्माजी ने अपने ऊपर ले लिया और इसके प्रायश्चित्त स्वरूप ७ दिन का उपवास किया। उत्कल प्रान्त की ग़रीबी को देखकर वे इतने द्रवित हुए कि वहाँ का दौरा उन्होंने नंगे पैर पैदल चलकर किया।

कौंसिल-प्रवेश

१६ जनवरी १९३४ को अचानक बिहार में भूकम्प आजाने की घटना से देश का ध्यान सत्याग्रह की ओर से हटकर भूकम्प-पीड़ित जनता की सहायता करने की ओर लग गया। गान्धीजी को भी अपने हरिजन-दौरे में से समय निकाल कर बिहार जाना पड़ा। बिहार का दौरा करते समय आपने यह अनुभव किया कि सत्याग्रह-आन्दोलन को अधिक समय तक जारी रखना अभीष्ट नहीं है। आप एक वक्तव्य सत्याग्रह को स्थगित करने के सम्बन्ध में निकालने को ही थे कि दिल्ली में ३१ मार्च १९३४ को डाक्टर अन्सारी की अध्यक्षता में नेताओं का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें स्वराज्य-दल को पुनः संगठित करके असेम्बली के आगामी चुनाव की लड़ाई लड़ने की आज्ञा कांग्रेस से प्राप्त करने का निश्चय किया गया। कुछ नेता पटना में आकर मिले। ७ अप्रेल को आपने सत्याग्रह स्थगित करने का वक्तव्य निकाल दिया और अपने लिए सत्याग्रह करने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता क़ायम रक्खी। कौंसिल-प्रेमियों को आपने कौंसिल-प्रवेश की स्वीकृति दे दी। बहुत विरोध होने पर भी कौंसिल-प्रवेश की नीति महासमिति द्वारा कबूल करली गई और बम्बई

के खुले अधिवेशन में भी इस पर अपनी स्वीकृति की मुहर लगा दी ।

समाजवादी दल की स्थापना

इस समय देश में एक और दल आगे आ रहा था । कुछ राजनीतिज्ञ ऐसे भी थे, जो महात्माजी के सत्याग्रह-आन्दोलन के पूरे-पूरे समर्थक तो न थे, परन्तु वे कौंसिल-प्रवेश के सर्वथा विरोधी थे । यह दल समाजवादी दल के नाम से प्रसिद्ध था । इसका प्रथम अधिवेशन आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में १७ मई १६३४ को हुआ । इसके बाद तो कांग्रेस में वैधानिक मनोवृत्ति घर कर गई और चुनाव-संग्राम की तैयारियाँ होने लगीं । पहले केन्द्रीय धारा-सभा के सदस्यों का निर्वाचन हुआ, इसके बाद प्रान्तीय धारा-सभाओं का । इस प्रकार कांग्रेस के अन्तर्गत एक ओर समाजवादी दल हुआ और दूसरी ओर महामना मालवीय और श्री अणे आदि साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से असहमत होकर कांग्रेस से अलग हो गए । बात यह थी कि साम्प्रदायिक निर्णय के विषय में कांग्रेस ने अपनी कोई राय जाहिर नहीं की थी और तटस्थ रहने की नीति की घोषणा की थी और मालवीयजी आदि उसमें विरोधी थे और उग्ररूप से विरोध करना चाहते थे । इसीलिए वे उससे अलग हो गये । इस बीच कांग्रेस की राजनीति में कुछ ऐसे परिवर्तन हुए थे, जिनसे महात्माजी सहमत न थे ।

गान्धीजी कांग्रेस से अलग

कौन्सिल-प्रवेश और देशी राज्यों के सम्बन्ध में कांग्रेस के अधिकांश नेता जो रुख अख्त्यार कर रहे थे वह महात्माजी के विचारों से सर्वथा भिन्न था । महात्माजी यह अनुभव कर रहे थे कि इस प्रकार विपरीत विचार रखते हुए भी, कांग्रेस के नेतागण उनकी उपस्थिति में उनके विचारों के विरुद्ध राय जाहिर करने में सङ्कोच का अनुभव कर रहे थे । महात्माजी ने अपने लेखों और वक्तव्यों द्वारा इस बात को दुहराया कि किसी को उनके कारण कोई सङ्कोच नहीं करना चाहिए और कांग्रेस के

सामने अपनी बात स्पष्ट शब्दों में पेश करनी चाहिए। परन्तु इसके बाद भी उन्होंने आवश्यक प्रसङ्गों में सङ्कोच की ही झलक पाई। वे भिन्न मत रखने वाले कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी राय व्यक्त करने तथा उसके अनुसार कार्य करने का मौक़ा देना चाहते थे। अतः उन्होंने १९३४ में कांग्रेस से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। वे चार आने चन्दा देने वाले साधारण सदस्य की हैसियत से भी कांग्रेस में न रहे। कांग्रेस से अलग रहकर भी आप उसका सदैव पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं। उसे विकट समस्याओं की उलझन से पार निकालने में और कांग्रेसवादियों को अपने ध्येय से विचलित न होने देने की सावधानी रखने में निरन्तर लगे रहे। अब तक की कार्य-समिति की सभी बैठकें प्रायः वर्धा में ही होती हैं और जो बाहर भी होती हैं, उनमें वे अवश्य ही सम्मिलित होते हैं।

रचनात्मक कार्य-क्रम

१९३४ में बाबू राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में यह निर्णय किया गया कि कौंसिलों के चुनावों में भाग लिया जाय। इसी समय साम्प्रदायिक प्रश्न को लेकर मालवीयजी आदि ने 'कांग्रेस नेशलिस्ट पार्टी' को जन्म दिया। उस पार्टी का सारा कार्य-क्रम कांग्रेस के अनुकूल था। केवल साम्प्रदायिक समस्याओं पर मतभेद था। कांग्रेस में अपने चुनाव लड़ने और उस सम्बन्ध की तमाम कार्यवाही को कार्यरूप में लाने के लिए एक पार्लियामेण्टरी बोर्ड भी बना दिया गया। इसी समय कांग्रेस में रचनात्मक कार्य-क्रम की ओर भी ध्यान दिया गया और ग्राम-उद्योगों को उन्नत करने की ओर भी ध्यान दिया गया।

बम्बई-कांग्रेस के समाप्त होते ही केन्द्रीय असेम्बली के निर्वाचन का समय आ गया और इस चुनाव में कांग्रेस ने अपने उम्मीदवार भी खड़े करने का निश्चय किया। यह चुनाव हुए और इनमें कांग्रेस को काफ़ी सफलता मिली।

७

स्वायत्त शासन

भारतीय शासन-विधान

१९३५ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने श्वेत-पत्र के आधार पर ही नया गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट् पास किया, जिसमें फैडरल शासन और प्रान्तीय स्वायत्त शासन की व्यवस्था थी। इसी को 'भारतीय शासन-विधान' के नाम से पुकारा जाता है। यों तो कांग्रेस इससे सन्तुष्ट नहीं थी फिर भी चुनाव लड़ने का निश्चय किया गया। प्रान्तीय स्वायत्त शासन की व्यवस्था वाले अंश को सरकार ने १ अप्रैल १९३७ से देश में लागू करने का निश्चय किया और लागू कर भी दिया तथा फैडरल (संघीय) शासन वाले अंश को कार्यान्वित करने की वह कोशिश करने लगी।

नवीन शासन-व्यवस्था के अनुसार १९३६ में प्रान्तीय असेम्बलियों का निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन-कार्य में कांग्रेस ने सभी प्रान्तों में अपने उम्मीद्वार खड़े किये और सभी जगह उसे आशातीत सफलता मिली। कई प्रान्तों में तो कांग्रेसी सदस्यों की संख्या इतनी अधिक हो गई थी कि अन्य सब सदस्य मिलकर भी अपना बहुमत न बना सके थे। इस अवस्था में सरकार को अपना कार्य-संचालन करने के लिए एक ही चारा था कि वह कांग्रेसी-सदस्यों में से ही मन्त्रियों का निर्वाचन करती। किन्तु कांग्रेस उस समय तक पद-ग्रहण के लिए तैयार न थी, जब तक कि सरकार की ओर से यह आश्वासन न मिल जाय कि वह इन मन्त्रियों दैनिक कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करेगी। आश्वासन के अभाव में कांग्रेसी सदस्यों ने मन्त्रित्व-ग्रहण नहीं किया। और चूँकि

सरकार को १ अप्रैल से अपने शासन-सुधार लागू कर ही देने थे, अतः उसने अल्प मत वाले सदस्यों में से मन्त्री चुनकर काम चलाने की कोशिश की, परन्तु कांग्रेस जैसे विशाल संगठन के आगे अल्पमत वालों का शासन चल सकता, यह सम्भवहीन था। अतः सरकार को अपने रुख में परिवर्तन करना पड़ा। उस बीच में वायसराय और भारत-मंत्री की ओर से जो वक्तव्य प्रकाशित हुए उनमें यद्यपि प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए गवर्नरों के हस्तक्षेप करने की बात स्पष्ट शब्दों में नहीं कही गई थी तथापि अन्य समस्त उपायों से यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि कांग्रेस मंत्री-पद ग्रहण करें तो गवर्नर उसके दैनिक कार्यों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करेंगे। इस प्रकार का आश्वासन पाने पर कांग्रेस की कार्य-समिति ने ७ जुलाई १९३५ को यह आज्ञा दे दी कि कांग्रेसी सदस्य मंत्री-पद ग्रहण कर सकते हैं।

सन् १९३५ में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसी वर्ष कांग्रेस ने धूम-धाम से अपनी स्वर्ण-जयन्ती मनाई।

कांग्रेस गाँवों की ओर

इसके उपरान्त कांग्रेस के अधिवेशनों के सम्बन्ध में एक भारी परिवर्तन हुआ। अभी तक कांग्रेस के अधिवेशन बड़े शहरों में ही होते रहे थे, इससे कांग्रेस का प्रचार गाँवों में उत्तम रीति से न हो पाता था। अतः १९३६ से यह सोचा गया कि कांग्रेस का अधिवेशन देहातों में किया गया। इसलिए पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में १९३६ में जो अधिवेशन हुआ, वह फैजपुर नामक महाराष्ट्र-प्रदेश के एक गाँव में हुआ था और तब से लेकर पिछले रामगढ़ के अधिवेशन तक वह गाँवों में ही होता चला आ रहा है। परन्तु रामगढ़ कांग्रेस के अवसर पर यह अनुभव हुआ कि वर्षा आदि की आकस्मिक विपरीतता के उपस्थित हो जाने पर देहातों का प्रबन्ध असुविधा जनक होता है। फैजपुर कांग्रेस के अवसर पर एक विशेष बात और भी हुई। अभी तक एक भी ऐसा

प्रसंग न आया था कि जब कोई भी व्यक्ति २ वर्ष तक लगातार कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया हो। फैज़पुर अधिवेशन के सभापति भी लखनऊ की ही भाँति श्री जवाहरलाल नेहरू निर्वाचित हुए थे। इस प्रकार फैज़पुर अधिवेशन की दो विशेषतायें रहीं।

कांग्रेस और समाजवाद

१६३६ में जब कांग्रेस का अधिवेशन श्री जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में लखनऊ में हुआ था, तब वे यूरोप से लौटे ही थे। यों तो वे पहले से ही समाजवाद के हिमायती हैं; किन्तु लखनऊ का सभापति होने से पूर्व ही की गई रूस-यात्रा ने उनके विचारों पर बहुत प्रभाव डाला था। कांग्रेस के इतिहास में सर्व प्रथम आपने ही सभापति के मंच से समाजवाद को अपनाने की अपील की। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि समाजवादी मनोवृत्ति एवं विचार-धारा का विकास जितना नेहरू जी के राष्ट्रपतित्वकाल में हुआ उतना दूसरे किसी समय में नहीं। कांग्रेस के वर्तमान इतिहास में वामपक्षीय शिशु को यदि श्री सुभाष-चन्द्र बोस ने नवीन और तगड़ा बनाया तो उसके जन्मकाल में पालन-पोषण का श्रेय श्री जवाहरलाल नेहरू को मिलना चाहिए।

बोस का राष्ट्रपतित्व

फैज़पुर कांग्रेस के बाद १६३८ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हरिपुरा में हुआ। यद्यपि हरिपुरा की कांग्रेस गुजरात के एक गाँव (सरदार पटेल के गाँव) में हुई, तथापि वह शान-शौकत में इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि शहरों की कांग्रेस भी उसके सामने मात थी। जब यह कांग्रेस हुई, उस समय में वैधानिक मनोवृत्ति ज़ोर मार रही थी। वायसराय इस प्रयत्न में थे कि किसी प्रकार संघ-शासन की समस्या को सुलझाया जाय और कांग्रेस को इस मायाजाल में फँसाया जाय। उस समय बहुतों को तो यह आशा हो गई थी कि प्रान्तीय मंत्रि-मण्डलों का काम चल लेने के बाद कांग्रेसी अवश्य ही, संघ-शासन को कुछ सुधारों के साथ स्वीकार कर लेंगे; किन्तु हरिपुरा अधिवेशन ने इस भ्रम को

सर्वथा दूर कर दिया और बाजाब्ता यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि कांग्रेस संघ-योजना को इसके वर्तमान रूप में कबूल नहीं कर सकती। कांग्रेस-अधिवेशन प्रस्ताव पास करने पर भी बहुत के अन्दर यह धारणा बनी रही कि कांग्रेस संघ-योजना कबूल करेगी ही। कारण यह था कि कार्य-समिति में, जिसके हाथों में कांग्रेस की बागडोर थी, उस समय दक्षिण-पन्थियों का बहुमत था। सुभाषचन्द्र बोस बराबर इस स्थिति से सावधान रहे और इस बात का प्रचार करते रहे कि कांग्रेस किसी भी अवस्था में सङ्घ-शासन को स्वीकार नहीं करेगी।

त्रिपुरी-अधिवेशन

ऐसी जद्दो-जहद की अवस्था में १६३६ में त्रिपुरी-अधिवेशन हुआ। यह अधिवेशन कांग्रेस के इतिहास में एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस बार कांग्रेस के सभापतित्व के प्रश्न को लेकर बड़ा तहलका मचा। जनता इस बार भी श्री सुभाषचन्द्र बोस को दुबारा राष्ट्रपति चुनना चाहती थी और कार्य-समिति के सदस्य इस बात के विरोधी थे कि वे दूसरी बार कांग्रेस के सभापति बनाये जायँ। सुभाष बाबू ने उनकी इस सलाह को मानने से सर्वथा इन्कार कर दिया। कांग्रेस के इतिहास में कार्य-समिति द्वारा नामजद सदस्य के विरुद्ध आज तक लड़ने की किसी ने भी हिम्मत न की थी। श्री सुभाषचन्द्र बोस ने यह उदाहरण सर्व प्रथम प्रस्तुत किया। वास्तव में इनको तथा वाम-पन्थियों को इस बात का सन्देह हो गया था कि किसी दक्षिण-पंथी के राष्ट्रपति होने पर बहुत आसानी से सङ्घ-योजना स्वीकार कर ली जायगी और भारतीय स्वाधीनता का प्रश्न पीछे पड़ जायगा। इसी बुनियाद पर त्रिपुरी-अधिवेशन के सभापतित्व के प्रश्न पर लड़ाई हुई। और लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब श्री सुभाषचन्द्र बोस डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या को हराकर राष्ट्रपति हो गये। परन्तु यह बोस और डॉ. पट्टाभि की विजय या पराजय का प्रश्न नहीं, यह तो नीति का प्रश्न था। कांग्रेस कार्य-समिति के तत्कालीन सदस्य और महात्मा गान्धी स्वयं इस चुनाव

के विरोधी थे। फलस्वरूप महात्माजी ने मौन भङ्ग किया और बोस-बाबू के चुनाव से अपनी असहमति प्रकट की। उन्होंने डॉ० पट्टाभि की हार को अपनी ही हार समझा, उनकी पराजय में अपनी नीति की पराजय देखी और इस आधार पर देश का नेतृत्व वहन करने से सर्वथा इनकार कर दिया।

यहाँ पर यह बतला देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि डॉ० खरे और नरीमान आदि के सम्बन्ध में कांग्रेस ने अनुशासन के दण्ड की जो नीति अख्तयार की थी, उसके तथा अन्यान्य कारणों से कांग्रेस के कतिपय पुराने नेताओं का विरोध देश में होने लगा था और वह निर्वाचन इस विरोध का स्पष्ट साक्षी था। त्रिपुरी-अधिवेशन के समय कांग्रेस का नेतृत्व बड़ी डांवाडोल स्थिति में था। महात्माजी उसी समय राजकोट का प्रश्न लेकर वहाँ चले गये। वहाँ उन्हें आमरण उपवास तक की घोषणा करनी पड़ी। वे अपनी जान खतरे में डाल कर पुरुष के अधिकारों की रक्षा करने के लिए लड़ रहे थे। इधर त्रिपुरी-अधिवेशन से पूर्व श्री सुभाषचन्द्र बोस बीमार हो गये। फिर भी उन्होंने साहस दिख... और स्ट्रेचर पर चढ़कर कलकत्ते से त्रिपुरी के लिए रवाना हुए ...र जब तक कांग्रेस होती रही, तब तक वे चारपाई पर ही पड़े रहे और इस अवस्था में भी कांग्रेस अधिवेशन की कार्रवाई को सफलता के साथ निबाहा। गान्धीजी के नेतृत्व वहन करने से सर्वथा इनकार करने ... देश की स्थिति बड़ी ही विषम हो गई और विवश होकर अन्ततः सुभाषबाबू को सभापतित्व से त्याग पत्र देना पड़ा और उनकी जगह पर राजेन्द्र बाबू कार्यवाहक अध्यक्ष बनाये गये।

फारवर्ड-ब्लाक की स्थापना

कांग्रेस के सभापतित्व से छुट्टी पाकर सुभाष बाबू ने देश में दौरा आरम्भ किया और उस दल की नींव डाली जो अब फारवर्ड-ब्लाक के नाम से विख्यात है। फारवर्ड-ब्लाक का प्रयत्न यह था कि कांग्रेस वैधानिकता के कार्य-क्रम को सर्वथा तिलांजलि दे दे। किसानों, मजदूरों

पीड़ितों के हितों की रक्षा करना इस दल का प्रमुख उद्देश्य है । वैधानिकता के कार्य-क्रम को तिलांजलि देने के उद्देश्य से ही सुभाषबाबू ने रामगढ़ कांग्रेस के अवसर पर समझौता विरोधी कान्फ्रेंस का आयोजन किया था । इससे तो कांग्रेस और फ़ारवर्ड के बीच और भी अधिक चौड़ी खाई हो गई ।

कांग्रेसी सरकारें

कांग्रेस कार्य-समिति की ७ जुलाई १९३५ की आज्ञा के बाद कांग्रेस ने मद्रास, बम्बई, सी० पी०, यू० पी०, सीमाप्रान्त, बिहार, उड़ीसा और आसाम प्रान्तों में अपने आप अपने बहुमत से सरकारें स्थापित कर ली थीं । सिन्ध में भी दूसरी पार्टियों के साथ सहयोग स्थापित कर लेने के बाद से रचनात्मक कार्यों में शक्ति लगा दी गई और ग्राम-सुधार, शिक्षा-प्रचार, मद्य-निषेध, खादी-प्रचार, अस्पृश्यता निवारण आदि अनेक कार्य किये गये । साथ ही कहीं-कहीं अधिकार प्राप्ति की बुराइयाँ भी कार्य-कर्त्ताओं में घुस गईं । जिसके कारण कांग्रेस को अनुशासन की कार्रवाई करनी पड़ी और लोगों का विरोध भी सहना पड़ा ।

मन्त्रि-मन्डलों का स्तीफा

मन्त्रि-मण्डल वर्तमान यूरोपीय युद्ध तक पदारूढ़ था । परन्तु यूरोपीय युद्ध के छिड़ जाने पर कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल ने अपने पदों से स्तीफे दे दिये । बात यह थी कि कांग्रेस के मन्तव्य के अनुसार कांग्रेसी मंत्रि-मंडल यूरोपीय युद्ध में सरकार का साथ नहीं दे सकता था । क्योंकि युद्ध हिंसा पर निर्भर करता था और कांग्रेस अहिंसा के सिद्धान्तों की अनुगामिनी है । यह स्थिति सरकार को सहन न थी । अतः जब कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने अपने सिद्धान्त के अनुसार कार्यवाही करनी चाही और सब प्रान्तों में युद्ध की सहायता के लिए प्रयत्न करने का निश्चय किया तो सरकार ने उस पर आपत्ति की । इसलिए मंत्रि-मंडलों ने विवश होकर स्तीफे दे दिये । फलतः स्वायत्तशासन स्थगित करना पड़ा, जिसकी स्वीकृति बाद में पार्लमैंट से मिली ।
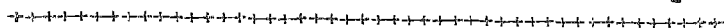
स्वायत्त शासन स्थगित

स्तीफे दाखिल हो जाने के बाद विभिन्न प्रान्तों की सरकारों ने यह कोशिश की कि अल्प मत वाले दलों की सहायता से मंत्रि-मण्डल स्थापित करके शासन करें। जब कांग्रेसी सदस्यों ने पद-ग्रहण नहीं किये थे तब भी बीच में सरकार ने इसी नीति से काम लिया था। उस समय तो उसे ऐसे लोग मिल ही गये थे, जिन्होंने पद स्वीकार करके काम चलाने की कोशिश की थी, यद्यपि वे चला नहीं सके थे। परन्तु इस बार सरकार को वैसे आदमी भी नहीं मिले। सम्भवत: पिछले अनुभव से लोगों ने देख लिया था कि कांग्रेस का इतना विशाल बहुमत है, कि उसका विरोध करके मिली पार्टी का शासन चलाना असम्भव है। जो हो, प्रान्तीय शासनों को चलाने के लिए सरकार को जब असेम्बली के सदस्यों में से भी कोई मंत्री नहीं मिले तो हारकर उसे गवर्नरों के द्वारा मंत्रि-विहीन शासन ही चलाना पड़ा।

८

भारत छोड़ो

युद्ध में सहायता का प्रश्न

पिछले पृष्ठों में पाठक पढ़ चुके हैं कि यूरोपीय युद्ध के सम्बन्ध में मतभेद हो जाने के कारण कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिये थे। युद्ध की आशङ्का से भारतवर्ष में भी बेचैनी बढ़ने लगी। लोग यह सोचने लगे कि ग़ुलामी की जञ्जीर को तोड़ फैंकने के लिए इससे अच्छा अवसर फिर कभी न मिलेगा। देश की इस मनोवृत्ति को गान्धीजी ने समझा और वायसराय ने भी। अतएव फिर परस्पर आदान-प्रदान और समझौते की बात चलने लगी। इधर सरकार प्रान्तों में एकतन्त्र शासन चला रही थी, उधर कौंसिल के बाहर जनता में सत्याग्रह-संग्राम चलाने की उत्सुकता बढ़ रही थी। रामगढ़ में जो कांग्रेस हुई, उसमें निश्चित रूप से सत्याग्रह छेड़ देने का प्रस्ताव पास हुआ और यह कहा गया कि महात्मा गान्धी के नेतृत्व में यह आन्दोलन छेड़ा जाय। इस प्रकार एक ओर सत्याग्रह की तैयारियाँ हो रही थीं दूसरी ओर सरकार इस चेष्टा में थी कि किसी भी प्रकार समझौता हो जाय और कांग्रेस का सहयोग उसे मिले। वायसराय ने कई वक्तव्य प्रकाशित कराये, परन्तु किसी वक्तव्य में भी यह नहीं कहा कि सम्पूर्ण या उचित अधिकार भी हिन्दुस्तान को दे देगी। इस सम्बन्ध में वायसराय ने देश के विभिन्न दलों के नेताओं को आमंत्रित करके बातचीत की। बातचीत का सिल-सिला देखकर कांग्रेस-कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि यदि सरकार भारत को स्वराज्य देने को तैयार हो तो उसे युद्ध में सहायता दी जाय।

हिंसा बनाम अहिंसा

इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के साथ ही स्वाभाविक रूप से जो बात पैदा होती थी वह यह थी कि कांग्रेस अहिंसा सम्बन्धी अपनी नीति में परिवर्त्तन करे। अतः उसी मीटिंग में कार्य-समिति ने यह भी निश्चय किया कि उस अहिंसा की नीति का पालन बाहरी आक्रमणों तथा भीतरी दंगों से देश की आत्म-रक्षा करने के लिए न होगा, किन्तु अन्य सब कार्यों में अहिंसा की नीति का पालन किया जायगा। यह प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण था। महात्मा गान्धी पूर्ण और सर्वत्र अहिंसा व्रत के पालन पर विश्वास रखने वाले, परन्तु उनके प्रभाव में रहने वाली कांग्रेस-कार्य-समिति इस प्रकार अहिंसा के विरुद्ध प्रस्ताव पास कर रही है। यह अवस्था बड़ी विचित्र और अड़चन डालने वाली हुई। महात्माजी के लिए यह असम्भव था कि ऐसी दशा में कांग्रेस को सहयोग देते रहते। अतः वे इस प्रस्ताव से अपनी असहमति प्रकट करते हुए उससे एकदम अलग हो गए। कांग्रेस के सदस्य तो वे बहुत दिन से नहीं थे, अब उन्होंने सहयोग न देने का भी निश्चय किया। महात्माजी के बिना कांग्रेस की कल्पना जन-साधारण के लिए असम्भव-सी बात थी। परन्तु यह असम्भव भी सफल हुआ और सबसे मार्के की बात यह थी कि महात्माजी के प्रधान अनुयायी श्री राजगोपालाचार्य और श्री वल्लभ भाई पटेल आदि ही इस प्रस्ताव के प्रमुख समर्थक थे।

राष्ट्रीय सरकार की माँग

वर्धा के बाद दिल्ली में कार्य-समिति की बैठक फिर हुई और उसमें भी वर्धा के प्रस्ताव को ही दुहराया गया तथा साथ ही साथ यह भी कहा गया कि स्वराज्य की घोषणा तो सरकार अभी करदे और परन्तु दे उसे युद्ध समाप्त होने पर ही। इसी बीच में, अपने इरादे की सचाई के सबूत के लिए वह यह करे कि एक राष्ट्रीय सरकार क़ायम करदे। इसके बाद पूना में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, जिसमें कार्य-समिति के इन प्रस्तावों का समर्थन हुआ। इन प्रस्तावों के विरोध में डॉ०

राजेन्द्रप्रसाद तथा उनके कतिपय अन्य साथियों ने मत दिये, परन्तु प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हो गये। इसके बाद महात्मा गान्धी के अनुयायियों ने तो कांग्रेस से स्तीफ़ा देकर अलग हो जाने का निर्णय भी किया। खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ दिल्ली-कमेटी के अवसर पर ही अलग हो गये थे। बाकी लोगों ने भी अलग होने की सोची।

व्यक्तिगत सत्याग्रह की शुरूआत

पूना की कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक के बाद देश की स्थिति में परिवर्तन हुआ। वायसराय महोदय तथा भारत-सचिव ने जो वक्तव्य दिये उनमें कांग्रेस की माँगों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। साथ ही वे अपनी बात मनाने के लिए ही विशेष रूप से जोर दे रहे थे। यह स्थिति कांग्रेस के लिए असह्य थी। अतः फिर जोरों के साथ व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़ दिया गया। नेताओं की गिरफ्तारियाँ शुरू हुईं; परन्तु प्रशान्त में जापानियों ने युद्ध छेड़ दिया। उसी का प्रभाव था कि ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस-कर्मियों को जेल-मुक्त कर दिया और स्थिति पर ध्यान रखते हुए कांग्रेस ने भी सत्याग्रह बन्द कर दिया। जब सुभाष बाबू ने यह देखा कि देश के नेता कोई बड़ा काम करने की मनोदशा में नहीं हैं तब वे चुपके से २५ जनवरी १९४१ को भारत से निकल भागे और पहले जर्मनी तथा बाद को सिंगापुर जाकर आज़ाद-हिन्द-फौज का संगठन करने लगे। उनकी आज़ाद-हिन्द-फ़ौज ने बड़ा कार्य किया।

सत्याग्रह स्थगित

पाठक उन परिस्थितियों से भली भाँति परिचित हैं, जिनमें कि कांग्रेस ने महात्मा गान्धी के नेतृत्व में व्यक्तिगत, सविनय अवज्ञा-आन्दोलन प्रारम्भ किया और एक वर्ष बाद उसे स्थगित कर दिया। आन्दोलन को अनिवार्य बनाने के कारण उपस्थित थे; परन्तु जापानी आक्रमण की आशंका और आसाम तथा विजगापट्टम पर हवाई हमलों के रूप में उसके आंशिक श्रीगणेश के कारण स्थिति बहुत कुछ बदल गई। कांग्रेस और गान्धीजी ने आन्दोलन को स्थगित करना ठीक समझा

और जो नई स्थिति उत्पन्न हो गई थी, उसमें देश को नागरिक रक्षा के लिए लगाने का उन्होंने निश्चय किया। कपड़े और अन्न के लिए स्वावलम्बन तथा आत्म-रक्षा का कार्यक्रम बनाया गया और समस्त कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं और कांग्रेस-कमेटियों से उसको क्रियात्मक रूप देने को कहा गया। यद्यपि सरकार से कोई प्रत्यक्ष सहयोग नहीं हो सकता था तथापि उससे संघर्ष भी मोल लेना उस समय उचित न था। कांग्रेस का सुझाव देश की सरकार से संघर्ष करने की अपेक्षा बाहर के आक्रमण का प्रतिरोध करने और शत्रु को भगाने की ओर अधिक था। हमने सरकार का सहयोग चाहा, परन्तु उसने इनकार कर दिया। उसने केवल एक शर्त रखी थी कि हम ग़ुलाम ही बने रहें। कांग्रेस इसे कदापि सहन नहीं कर सकती थी।

हिन्दुस्तान की आँखें खुलीं

जब हम लोग आत्म-रक्षण एवं स्वावलम्बन के कार्य में व्यस्त थे तब भारत में और उसके बाहर कुछ ऐसी घटनायें घटीं, जिन्होंने कांग्रेस कार्य-समिति को इस परिवर्तन पर नये सिरे से विचार करने के लिए विवश किया। जापानियों ने हाँगकाँग, मलाया, सिंगापुर और बर्मा से अँग्रेजों को भगा दिया था। हाँगकाँग में यद्यपि कुछ मुकाबला हुआ परन्तु शेष तीनों प्रदेशों में कोई अच्छी लड़ाई तो क्या साधारण मुठभेड़ तक नहीं हुई। जापानियों ने सारा क्षेत्र सरलता पूर्वक अपने अधिकार में कर लिया। इन प्रदेशों के लोग अँग्रेजों और उनके अत्याचारों, कायरताओं तथा अयोग्यताओं से इतने तंग थे कि उन्होंने जापानियों का प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया। विशेष रूप से बर्मा की जनता ने जो कष्ट झेले, वे अकथनीय हैं। भारतवासियों को तो सबसे अधिक यातनायें वहाँ पर झेलनी पड़ीं। अँग्रेज जिस ढंग से इन देशों में युद्ध का संचालन कर रहे थे, वह बहुत ही निकम्मा और दोषपूर्ण था। इससे हिन्दुस्तान की आँखें खुलीं और उसने अनुभव किया कि निकट भविष्य में कदाचित् उसे भी ऐसी ही विषम यातनाओं का शिकार होना पड़े। हमें यह

मालूम था कि ब्रिटिश सरकार बहुत जालिम है, परन्तु हमें यह मालूम नहीं था कि वह इतनी निकम्मी और डरपोक भी है। भारत की घटनाओं पर भी हमने बहुत गम्भीरता के साथ विचार किया। भारतीय शासन-व्यवस्था अधिकाधिक स्वेच्छाचारी बन रही थी। युद्ध-प्रयास के लिए भारत के साधनों और जनता का बुरी तरह से शोषण किया जा रहा था। युद्ध-प्रयास का तात्पर्य लोगों का शोषण, गाँव वालों को १२ या २४ घंटे के नोटिस पर गाँव खाली करने के लिए विवश करना, नौकाओं, मोटरों गाड़ियों, और ऊँटों आदि पर अधिकार करना तथा नागरिक रक्षा के नाम पर पानी की तरह पैसा बहाना था। युद्ध-प्रयास और रिश्वतखोरी एक ही तात्पर्य में लिये जाते थे। यद्यपि वायसराय, भारत-मन्त्री और ब्रिटिश प्रधान मन्त्री भारतीय स्थिति के विषय में बहुत लम्बे चौड़े वक्तव्य दे रहे थे; परन्तु अमेरिका और चीन जैसे देशों में भारतीय समस्या को लेकर एक तीव्र असन्तोष फैल रहा था। अमेरिका और चीन युद्ध में ब्रिटेन के साथी थे। अतः ब्रिटेन के लिए भारत जैसे महत्त्व पूर्ण मामले में उनकी इच्छाओं और भावनाओं की उपेक्षा करना सरल नहीं था। इन देशों को यह मालूम था कि भारत युद्ध में एक महत्त्वपूर्ण और निर्णायक सहायता दे सकता है।

क्रिप्स-योजना

भारतीय समस्या का समाधान करने की अपेक्षा अमेरिका के बढ़ते हुए असन्तोष को मिटाने की भावना से ब्रिटिश मन्त्रि-मंडल ने कुछ योजनायें देकर सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। यह योजनायें आंशिक रूप में वर्तमान स्थिति के विषय में थीं। इन योजनाओं को लेकर क्रिप्स और कांग्रेस के बीच जो बातें चलीं, उनसे पाठक परिचित ही हैं। गांधीजी के शब्दों में क्रिप्स-योजना उस बैंक की हुँडी थी, जिस का दिवाला निकलने जा रहा था। सर क्रिप्स के वक्तव्यों और सन्धि-चर्चा के दिनों में हुये रहस्योद्घाटन से ब्रिटिश प्रस्तावों का खोखलापन स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया था। इससे अधिक दिल्ली और लन्दन के सत्ताधारियों का कमीनापन और कैसे प्रमाणित हो सकता था? विशेषरूप से गान्धीजी को तो

उनकी इस 'क्रिप्स-योजना से बहुत कष्ट पहुँचा। भारत और उसके बाहर की इन घटनाओं से कांग्रेस और गान्धीजी को यह विश्वास हो गया कि जब तक भारत से ब्रिटिश सरकार का शासन नहीं उठ जाता, तब तक भारत की कोई भी समस्या हल नहीं हो सकती। युद्ध की समाप्ति तक स्वतन्त्रता की प्रतीक्षा करने का अर्थ भारत को उस विशाल नाटक का, जो कि संसार के रंगमंच पर खेला जा रहा था, एक निष्क्रिय दर्शक बनना था। यह आधुनिक जाग्रत भारत की शान के सर्वथा विपरीत था। भारतीय शासक जिस ढंग से चल रहे थे, वह लोगों में अनैतिकता की भावना का प्रचारक और उनमें कटुता तथा घृणा उत्पन्न करने वाला था। वह उनको गुप्त या पूर्ण रूप में जापानी आक्रमण का स्वागत करने और उसके द्वारा ब्रिटिश गुलामी से मुक्ति पाने को प्रोत्साहित कर रहा था। यह घटना ब्रिटेन और भारत दोनों के लिए ही हानिकारक थी। गान्धीजी का यह आग्रह था कि भारत को मुक्त करना स्वयम् ब्रिटेन के हित में है। विश्व-स्थिति और नैतिक आदर्शों के प्रकाश में भारत ब्रिटेन के कन्धों पर एक भारी बोझ था।

भारत छोड़ो का नारा

इंग्लैंड का यह कार्य भारत की आकांक्षा ही नहीं बल्कि उसकी प्रतिष्ठा के लिए भी घातक सिद्ध हुआ और सारे देश में क्षोभ की लहर दौड़ गई। गान्धीजी अपने हरिजन पत्र में कठिन से कठिन और कटु से कटु भाषा प्रयुक्त करने लगे और उनकी प्रत्येक साँस पर देश की भुजा फड़कने लगी। गान्धीजी को इस विषय में बहुत गम्भीर चिन्तन करना पड़ा और वे इस परिणाम पर पहुँचे कि भारत और ब्रिटेन दोनों का हित इसी में है कि अँग्रेज भारत छोड़कर चले जायँ। हम ऊपर की इन पंक्तियों में उन सभी घटनाओं पर प्रकाश डाल चुके हैं; जो देश के अन्दर और बाहर समय-समय पर घटीं और जिन्होंने गान्धीजी को इस परिणाम पर पहुँचने के लिए विवश किया कि युद्ध में वीरतापूर्वक भाग लेने या बाहरी आक्रमण से भारत की रक्षा करने के लिए भारत का स्वतन्त्र होना नितान्त आवश्यक है।

गांधीजी 'हरिजन' में

'भारत छोड़ो' आन्दोलन की रूप-रेखा सम्बन्धी महात्मा गान्धीजी का लेख २६ अप्रैल १९४२ के 'हरिजन' में प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की भावी योजना पर सर्व प्रथम सार्वजनिक रूप से प्रकाश डाला था। इस लेख में उन्होंने कहा था—"भारतवर्ष के लिए चाहे इसका कुछ भी फल हो, उसकी और ब्रिटेन की भी वास्तविक सुरक्षा इसी में है कि अँग्रेज व्यवस्था पूर्वक और समय रहते "भारत से चले जायँ।" गान्धीजी से बीच-बीच में इस आन्दोलन की व्यवस्था और सफलता के विषय में लोगों ने जब पूछा तो उन्होंने अपना दृष्टिकोण इस प्रकार समझाया—"यह एक ऐसा आन्दोलन होगा कि जिसका अस्तित्व एवं महत्त्व समस्त संसार अनुभव करेगा। सम्भव है कि यह आन्दोलन ब्रिटिश-सेना की हलचलों में बाधा न पहुँचा सके, परन्तु यह तो निश्चित है कि इसकी ओर अँग्रेजों का ध्यान आकृष्ट होकर ही रहेगा।"

सबसे पहले गान्धीजी ने १० मई को यह निश्चय किया था कि भारत की भलाई अङ्गरेज के भारत छोड़कर चले जाने में ही है। उन्होंने ७ जून के 'हरिजन' में अपनी अधीरता प्रकट करते हुए लिखा था कि "मैंने प्रतीक्षा की और तब तक प्रतीक्षा की, जब तक कि देश में विदेशी दासता के जुए को उतार फेंकने के लिए आवश्यक अहिंसात्मक शक्ति न पनप जाय। किन्तु अब मैं प्रतीक्षा नहीं कर सकता। यदि मैंने प्रतीक्षा जारी रखी तो मुझे प्रलय के दिन तक प्रतीक्षा करनी होगी। जिस तैयारी के लिए मैं प्रार्थना तथा प्रयत्न करता रहा हूं उसका अवसर शायद कभी न आये, और इसी बीच मुझे वे ज्वाला में घेर लें और निगल जायं जो हम सबको भयभीत कर रही हैं। इसी कारण मैंने निश्चय किया है कि कुछ खतरे सिर पर उठाकर भी, जो कि अनिवार्यतः आयंगे ही, मुझे जनता को दासत्व का प्रतिरोध करने के लिए अवश्य ही कहना चाहिए।"

गान्धीजी के 'भारत छोड़ो' नारे से और विशेष रूप से तब जब कि ब्रिटेन एक के बाद दूसरी हार खा रहा था, ब्रिटिश हुकूमत और ब्रिटिश

जनता भड़क उठी। गान्धीजी ने बहुत ही धैर्य से उन सब आलोचनाओं का अध्ययन किया। गान्धीजी के प्रस्ताव पर उनकी मुख्य आपत्ति यह थी कि स्वाधीन भारत सरलता से जापान का शिकार बन जायगा क्योंकि उसमें लड़ने की शक्ति बहुत कम होगी।' इस पर गान्धीजी ने उत्तर दिया कि यदि कांग्रेस की माँग पूरी करने में ब्रिटेन के सामने यही बाधा है तो वह हिन्दुस्तान में मित्र-सेनाओं को रखने के लिए सहमत हैं, जिससे वे आक्रमण होने पर उसका प्रतिरोध कर सकें। इस एक और आपत्ति पर कि साम्प्रदायिक समझौता न होने की दशा में कोई स्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित नहीं हो सकी, गान्धीजी और तात्कालिक राष्ट्रपति मौलाना आजाद ने उत्तर दिया कि "वे सारी सत्ता मुस्लिम लीग या अन्य किसी उत्तरदायी संस्था को, जिसे वे उचित समझें, सौंपकर चले जायँ। कांग्रेस उस दल के साथ पूर्ण सहयोग करेगी। यदि इससे भी बुरा हो और देश में अराजकता फैले तो भी वे इसे वर्तमान राष्ट्रीय अपमान और प्रस्तुत 'व्यवस्थित और वैधानिक अराजकता से कहीं अधिक पसन्द करेंगे'। गान्धीजी ने 'हरिजन' में इस संबंध में भी लिखा था—"मैंने अङ्गरेजों से यह नहीं कहा कि वे भारतवर्ष को कांग्रेस अथवा हिन्दुओं के हाथ में सौंप दें। भले ही वे भारत को परमात्मा के भरोसे अथवा आधुनिक भाषा में अराजकता के हवाले कर दें। सारे दल एक दूसरे से कुत्तों की तरह लड़ेंगे, अथवा, जब उन्हें वास्तविक उत्तरदायित्व का बोध हो जायगा, विवेकपूर्ण समझौता कर लेंगे। मैं उस अव्यवस्था और विशृंखलता में से अहिंसा के उद्भव की आशा करता हूँ।"

क्रिप्स-योजना की विफलता

क्रिप्स-योजना की विफलता का कारण यह था कि देश के अधिकांश नेता उसमें निर्दिष्ट सुविधाओं से असन्तुष्ट थे। उस योजना का सारांश संक्षेप में यह था कि युद्धोपरान्त 'विधान-निर्मात्री परिषद्' में भारत के निर्वाचित सदस्यों को विधान तैयार करने का अधिकार होगा। समस्त

भारत का एक सङ्घ क़ायम होगा, जिसमें देशी रियासतें भी सम्मिलित होंगी। परन्तु सङ्घ में सम्मिलित होने के लिए किसी भी प्रान्त या देशी राज्य को अपना विधान बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। वायसराय-कौंसिल को मंत्रि-मण्डल के स्वरूप में परिवर्तित नहीं किया जायगा। तात्पर्य यह है कि वर्तमान व्यवस्था पूर्ववत् रहेगी। इन सब बातों पर विचार करने से देखा गया कि इस योजना में देश के विभाजन और पाकिस्तानी माँग के समर्थन की काफ़ी गुञ्जाइश थी। यह सब कुछ होते हुए भी युद्धकालीन व्यवस्था के सम्बन्ध में यदि सन्तोषजनक सुधार होते तो उसे स्वीकार करने में किसी को कुछ भी आपत्ति न होती। परन्तु कांग्रेस ने इस पर शुरू से आख़िर तक विचार करके देखा तो इसे बिलकुल अनुपयुक्त अयोग्य एवं अमान्य बतला दिया और सङ्घर्ष की नींव पड़ गई।

९

अगस्त-आन्दोलन

पूर्व रूप व महत्त्व

अगस्त-आन्दोलन की नींव क्रिप्स-योजना की विफलता से पड़ी, यह हम पिछले अध्याय में लिख आये हैं। अगस्त-आन्दोलन के सामने १८५७ का ग़दर, फ्राँसीसी राज्य-क्रान्ति और १९०७ की रूस की लाल-क्रान्ति भी कितनी बातों में फीकी जान पड़ती हैं। यह आन्दोलन हमारी आज़ादी का सामूहिक प्रयत्न था, जिसकी चिनगारी गाँव-गाँव में फैल गई थी। गान्धीजी के 'भारत छोड़ो' नारे की महत्ता सभी देश ने एक स्वर से स्वीकार की। इस सम्बन्ध में विस्तृत रूप से विचार करने के लिए अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में प्रयाग में कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक बुलाई गई। उस बैठक में ब्रिटिश सत्ता के अविलम्ब भारत छोड़कर चले जाने और गान्धीजी एवं समस्त देश की माँग के वास्तविक अभिप्राय पर अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक विचार किया गया। इसके उपरान्त १४ जुलाई १९४२ को वर्धा में फिर सब कांग्रेसी नेता एकत्रित हुए और सबने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव एक स्वर से स्वीकार कर लिया। साथ ही यह भी निश्चय किया कि यदि ब्रिटिश सरकार ने हमारी इस माँग को स्वीकार न किया तो समस्त देश में फिर सविनय अवज्ञा आन्दोलन जारी किया जाय।

बम्बई-अधिवेशन

प्रयाग और वर्धा की कांग्रेस-कार्य-समितियों में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन सम्बन्धी जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे, उन्हें अन्तिम निर्णय के लिए अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी को सुपुर्द किया गया। इसी के लिए

बम्बई में आठ अगस्त को सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए। ८ अगस्त १९४२ की रात में यह प्रस्ताव उत्साह पूर्वक पास किया गया कि "यदि अँग्रेज भारत को शीघ्र ही स्वतन्त्र नहीं कर देते तो भारत को अपनी आजादी का अन्तिम संघर्ष प्रारम्भ कर ही देना चाहिए।" प्रस्ताव में यह गुञ्जाइश रक्खी गई थी कि गान्धीजी मित्रराष्ट्रों के नायकों से पत्र-व्यवहार करके उचित शर्तों पर समझौता कर सकें तो संघर्ष प्रारम्भ न किया जाय। मगर ब्रिटिश नौकरशाही पिछले चार मास की जागृति से काफी घबरा गई थी और वह कांग्रेस को इतना अवसर नहीं देना चाहती थी कि उसे इस आन्दोलन की तैयारी के लिए पूर्ण अवसर मिल जाय।

करो या मरो का मन्त्र-दान

इसी बीच में महात्मा गान्धी ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे—"ईश्वर मुझ से पूछेगा कि जब दुनियाँ में चारों ओर अग्नि धधक रही थी, क्रान्ति की लपटें प्रचण्ड होकर उठ रही थीं, हिंसा का साम्राज्य था, तो क्यों न तूने मेरे उस महामन्त्र अर्थात् शान्ति के पाठ को दुनियाँ के सामने रक्खा, क्यों न अँधेरे में उजाले का सन्देश दिया, असत्य के वातावरण में सत्य का नाम लिया?" अगस्त-प्रस्ताव में भारत की आत्मा बोल रही थी। यह प्रस्ताव देश की अभिलाषा और मनः स्थिति का स्पष्ट प्रतीक था। हमने विगत महायुद्ध को, जिसका हाल ही में अन्त हुआ है, साम्राज्यवादी युद्ध समझ लिया था, क्योंकि यह युद्ध साम्राज्यवाद के लिए ही हो रहा था। हमारा यह सदा से विश्वास रहा है कि साम्राज्यवाद का जड़-मूल से विनाश हुए बिना संसार में शान्ति नहीं हो सकती।

८ अगस्त १९४२ की रात को कांग्रेस महासमिति ने महात्माजी का 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार किया था; जो बाद में अगस्त-प्रस्ताव के नाम से भी पुकारा जाने लगा। अगले दिन अर्थात् ९ अगस्त को प्रातः काल महात्मा गाँधीजी को कांग्रेस कार्य-समिति के समस्त सदस्यों और दूसरे नेताओं सहित गिरफ्तार कर लिया गया। अपनी गिरफ्तारी से पूर्व महात्माजी ने 'करो या मरो' का निम्न सन्देश दिया—

"पूर्ण गति अवरोध, हड़ताल और समस्त अहिंसात्मक साधनों का प्रयोग करके प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा के अन्तर्गत चरम सीमा तक जाने के लिए स्वतन्त्र है। सत्याग्रही मरने के लिए बाहर जायँ, जीने के लिए नहीं। राष्ट्र का उद्धार केवल उसी अवस्था में होगा, जबकि लोग मृत्यु को ढूंढने और उसका सामना करने के लिए बाहर निकलेंगे। करेंगे या मरेंगे।"

दमन और विद्रोह

महात्मा गान्धी व नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार समस्त राष्ट्र में बिजली की तरह फैल गया। बम्बई के ग्वालिया तालाब के मैदान में लाखों की संख्या में इकट्ठी हुई जनता ने झण्डाभिवादन किया। पुलिस इसे बर्दाश्त न कर सकी और उसने निहत्थी जनता पर लाठी व गोली की वर्षा की। इसका प्रभाव अहमदाबाद और पूना पर भी पड़ा। वहाँ की जनता ने प्रदर्शन प्रारम्भ किये। तब तक शेष समूचे देश में शान्ति रही। १० अगस्त को दिल्ली तथा यू० पी० के कुछ क्षेत्रों में जनता ने अपने नेताओं की गिरफ्तारी के विरुद्ध प्रदर्शन किए, किन्तु ११ अगस्त के बाद जनता प्रदर्शनों, सभाओं और जुलूसों से आगे बढ़ गई। रेल की पटरियाँ उखड़नी शुरू हो गईं, तार काटे जाने लगे, पुलिस के सरकारी अफ़सरों का खून होने लगा, सरकारी इमारतें फूँकी जाने लगीं, रेलवे स्टेशन व बैंक लूट लिये गये। यह सब कार्य बम्बई में ही नहीं, प्रत्युत मद्रास, बिहार, यू० पी० व सी० पी० में भी जोर के साथ प्रारम्भ हुए। विद्रोह की भावना समूचे देश में एक गम्भीर रूप धारण कर गई।

एक नज़र में

संयुक्त प्रान्त के पूर्वी जिलों में अशान्ति की आग प्रचण्ड वेग से फैल गई। सरकारी अधिकारी परेशान और किंकर्तव्य-विमूढ़ थे। ई० आई० आर० व बी० एन० डब्ल्यू आर० की गाड़ियों का चलना बिलकुल बन्द हो गया। एक समय ऐसा भी आया जब कि बङ्गाल का

उत्तर भारत के साथ एकदम सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था । मद्रास के गन्टूर जिले में और बेजवाड़ा के चारों ओर रेल पथ उड़ा दिये गए । निःसन्देह नेताओं की गिरफ्तारी के बाद जनता का आन्दोलन उन प्रदेशों में उग्र-रूप धारण कर गया, जो सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्व-पूर्ण थे । आसाम, उड़ीसा, पंजाब, सीमा प्रान्त और सिन्ध में प्रदर्शन तो हुए, परन्तु जनता के रोष ने भीषण रूप धारण नहीं किया ।

नेताओं की गिर,फ्तारी के बाद प्रथम दो सप्ताहों में बिहार यू० पी० व सी०पी० में जनता का विद्रोह अत्यन्त उग्ररूप धारण कर गया । तीसरे सप्ताह सरकारी दमन के कारण जनता का प्रतिरोध ढीला पड़ने लगा और चौथे सप्ताह दमन इतनी बुरी तरह हुआ कि निहत्थी जनता को अपने मानसिक असन्तोष को मूर्त रूप देना बन्द कर देना पड़ा । चौथे सप्ताह आसाम में भी जनता ने सिर उठाया । छठे सप्ताह में संयुक्त प्रान्त को छोड़कर शेष समूचे देश में सरकारी दमन के कारण जन-आन्दोलन ऊपर-से-ऊपर शान्त हो गया । किन्तु अनेक नेताओं ने अपना काम जारी रक्खा । कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं ने बम्बई को अपना केन्द्र बनाकर राष्ट्रीय आन्दोलन की ज्वाला को प्रज्वलित किया । नवम्बर १९४२ के बाद श्री जयप्रकाशनारायण हजारीबाग जेल से अपने ४ दूसरे साथियों समेत भाग गये । भागने के बाद वे जहाँ कहीं भी गये, विद्रोह का सन्देश जनता तक पहुँचाते रहे । दिल्ली में अरुणा आसफअली एवं श्री जुगलकिशोर खन्ना फरारी के अवस्था में ही जनता का नेतृत्व कर रहे थे । इस प्रकार संक्षेप में हमने बताया कि नेताओं की गिर,फ्तारी के बाद ६ सप्ताह तक समूचे भारत में अपना रोष जनता ने किस प्रकार प्रकट किया । नीचे की पंक्तियों में क्रमशः एक-एक प्रान्त में हुए आन्दोलन का संक्षेप में उल्लेख करेंगे । पाठक देखेंगे कि साधनहीन अवस्था में भी किस प्रकार वीरतापूर्वक जनता ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की चुनौती का सामना किया ।

बिहार

अगस्त-आन्दोलन में बिहार का स्थान सबसे आगे है । बिहार की

जनता ने शायद इस बार फिर मगध-साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न लिया था। इस आन्दोलन के अतिरिक्त विहार ने तो सभी आन्दोलनों में अपने अनुपम त्याग, कष्ट-सहिष्णुता और स्वातंत्र-प्रियता का परिचय दिया है। क्रांति की चिनगारी पटना में लगी, फिर वह चम्पारन, शाहबाद, दरभङ्गा, पूर्णिया, भागलपुर, मुंगेर, छपरा, मुजफ्फरपुर, गया, हजारीबाग, पलामू राँची, में दावानल की अशान्ति फैल गई। लेकिन पुलिस और फौज ने विहार में खुलकर खून की होली खेली। यही कारण है कि वहाँ पर प्रान्त के ४७० व्यक्ति गोलियों से भून दिये गये और ७८१ व्यक्ति घायल हुए। ५१०३६ व्यक्तियों को गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर दिया गया। इनमें से ७८२३ व्यक्तियों को सख्त जेल की सजा दी गई। क़रीब १०७२ व्यक्ति नजरबन्द कर दिये गये। लाखों रुपये गाँवों से जुरमाने के रूप से वसूल किये गये। सार्वजनिक संस्थाओं तक की जायदादें जब्त कर ली गई। जनता के अनुरोध और राजेन्द्रबाबू के प्रयास के बावजूद भी नौकरशाही ने महेउ चौधरी और महेन्द्र गोप को फाँसी के तख्ते पर लटका दिया।

यू० पी०

१८५७ के गदर का प्रारम्भ भी तो यू० पी० के मेरठ जिले से हुआ था, जहाँ पर कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में हो रहा है। अतएव ब्रिटिश सरकार ने इस प्रान्त में फौजी भर्ती बन्द कर दी थी। इस प्रान्त में सर मारिस हैलट का पूर्णतया सैनिक-राज्य रहा। लोग सब प्रकार से आतंकित किये गये। तनिक-सी ही उत्तेजना पर लोग गोलियों के शिकार बनाये गये। अनेक स्थानों पर महिलाओं को अपमानित किया गया। विद्यार्थी निर्दयता के साथ सताये गये। घरों में आग लगाई गई और गाँव के गाँव जला दिये गये तथा लूट लिये गये।

अगस्त-आन्दोलन में बलिया का सबसे प्रमुख हाथ है। ९ अगस्त को यहाँ के समस्त कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिए गये। १० अगस्त से

१२ अगस्त तक बलिया में भारी दमन के बावजूद भी हड़ताल रही। लोग जुलूस निकालते रहे। १२ अगस्त से सारे ज़िले में तार काटने, रेल की पटरियाँ उखाड़ने, पुल तोड़ने और यातायात के साधन नष्ट करने का काम आरम्भ हो गया। १४ की शाम तक बलिया के सारे ज़िले का सब प्रान्त से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। १५ अगस्त को ज़िला-कांग्रेस के दफ़्तर पर कांग्रेस का फिर अधिकार हो गया। १६ अगस्त को कांग्रेस के हुक्म पर सारे बाज़ार खुले। पुलिस ने शासक की प्रतिष्ठा समाप्त होते देखकर गोली चला दी, फलस्वरूप १६ अगस्त को बलिया में ब्रिटिश सरकार का शासन समाप्त हो गया। जनता ने कलक्टरी, ख़ज़ाने और जेल पर कब्ज़ा कर लिया। ज़िले के सब कांग्रेसी जेल से रिहा कर दिये गए। २० अगस्त को चित्तू पाण्डे की अध्यक्षता में नवीन राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। इस सरकार के आधीन ग्राम-पंचायतों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। ज़िले भर में इन दिनों कोई भी जुर्म नहीं हुआ। २२ अगस्त तक बलिया की जनता की सरकार चलती रही। अस्तु, २२–२३ की बीच की रात को गोरा-पल्टन ने बलिया में प्रवेश किया। लूट, फूँक और मार-पीट का दौर-दौरा शुरू हो गया। सारे ज़िले पर लगभग १२ लाख रुपया जुरमाना किया गया और २६ लाख से भी अधिक जबरदस्ती वसूल किया गया। ४६ आदमी मारे गये, २०५ मकान फूँक दिये गये और लगभग ३८ लाख रुपये की हानि समस्त ज़िले को उठानी हुई।

इसी प्रकार आज़मगढ़ में भी जनता ने साम्राज्यवादी दमन का वीरतापूर्वक सामना किया। १० अगस्त से १६ अगस्त तक सारा ज़िला क्रान्तिकारियों की कार्यवाइयों का केन्द्र बना रहा। किन्तु १६ अगस्त को नाग पंचमी के दिन गोरा-पल्टन ने आकर मार-काट मचा दी। ज़िले में २०५ मकान फूँक दिये गये; जिससे ३ लाख ५२६ रुपये का नुक़सान हुआ। समस्त ज़िले पर एक लाख साठ हज़ार रुपया जुरमाना किया गया और लगभग १०७ व्यक्तियों को जान से मार दिया गया।

सारांशतः सारा ही यू० पी० आन्दोलन का केन्द्र हो रहा था। गाँवों पर सामूहिक जुरमाने किये गये, जिन्हें नई कांग्रेसी सरकार लौटाने वाली है। हजारों व्यक्ति जेल में बन्द कर दिये गये और युवक श्री राजनारायण मिश्र को जनता के विरोध के बावजूद भी फाँसी पर लटका दिया गया।

मध्य-प्रान्त

मध्य-प्रान्त का सेवाग्राम भारत का राष्ट्रीय तीर्थ है। महात्मा गान्धी का निवास-स्थान होते हुए यह कैसे अगस्त-आन्दोलन की चिनगारी से अछूता रह सकता था। सरकारी दमन के बावजूद जनता ने पुलिस-चौकियों तथा कचहरियों पर कब्जा करने की कोशिश की। हजारों कांग्रेसी जेलों में बन्द कर दिये गए।

जिस प्रकार यू० पी० में बलिया और आजमगढ़ का नाम भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में अमर हो गया है, उसी प्रकार मध्यप्रांत में आष्टी व चिमूर ने अगस्त-आन्दोलन को चार चाँद लगा दिये थे। आष्टी के ५८ ग्रामीणों को उन दिनों जेलों में बन्द कर दिया गया था। इनमें से ५२ को काले पानी की सजा दी गई, शेष तीन को आजीवन कारावास की सजा हुई है। चिमूर में सरकारी दमन का श्रीगणेश भी नागपंचमी से ही हुआ था। आज़मगढ़ में भी दमन इसी दिन शुरू हुआ था। पुलिस ने निकलते हुए शान्त जुलूस पर गोलियाँ चला दीं। लोग बैठ गये, मगर पुलिस दनादन [illegible] उत्तेजित जनता ने पुलिस का मुकाबला किया [illegible] से हाथ धो बैठे। पुलिस जब स्थिति को भली प्रकार न सँभाल सकी तो गोरा-पल्टन पहुँची। मार-पीट और गिरफ्तारी के अलावा फौजियों ने नैतिकता की सीमा का उल्लङ्घन कर दिया। चिमूर के सम्भ्रान्त परिवारों की महिलाओं के साथ बलात्कार किये गये। १२ वर्ष की बालिकाओं से लेकर ५५ वर्ष की वृद्धाओं तक को इन फौजियों ने अछूता नहीं छोड़ा। आन्दोलन के दिनों में भंसाली ने इन अत्याचारों की जाँच के लिए अनशन भी किया था।

बंगाल

बंगाल का मेदिनीपुर जिला सदैव इतिहास में स्मरणीय रहेगा। नेताओं की गिरफ्तारियों के बाद वहाँ की जनता ने अपनी सरकार स्थापित करली। सरकारी कर्मचारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें अनेक प्रकार की सजायें दी गईं। अगस्त-आन्दोलन के दिनों में वहाँ पर लूट, बलात्कार, खूँरेजी और पैशाचिकता का बोल बाला था। मेदिनीपुर जिले के तामलुक सब-डिवीजन में अगस्त १९४२ से अगस्त १९४४ के बीच पुलिस और फौज के आदमियों ने २२ स्थानों पर गोलियाँ चलाईं, जिसके परिणामस्वरूप ४४ व्यक्ति मरे, १९४ सख्त और १४२ थोड़े घायल हुए। इन्हीं दिनों ६३ स्त्रियों पर बलात्कार किया गया और ३३ स्त्रियों पर बलात्कार करने का प्रयत्न किया गया। १८६८ व्यक्ति गिरफ्तार किये गये और ५०७६ व्यक्ति गैरक़ानूनी तौर पर नजरबन्द किये गये। इस समय के बीच १२४ स्थान जलाये गये, ४९ मकान जब्त किये गये और १०४४ मकानों में से २१२७९५) रुपये की सम्पत्ति लूटी गई। ५९ परिवारों की २५३६५) रुपये की सम्पत्ति जब्त करली गई। ५ यूनियनों पर १६००००) रुपये जुरमाना किया गया। १९ संस्थायें गैरक़ानूनी क़रार दी गईं। यहाँ के 'सुनादारा' नामक थाने पर अधिकार कर लेने पर जनता पर वायुयान द्वारा बम गिराये गये। ३० पुल तोड़े गये थे, अनेक सरकारी अफ़सर गिरफ्तार किये गये थे। १७ दिसम्बर १९४२ को लोगों ने डिवीजन में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करली थी, जिसका प्रबन्ध बहुत ही सुन्दर रीति से होता था। मेदिनीपुर जिले के कोनगई सब-डिवीजन में भी आन्दोलन के समय इसी प्रकार दमन हुआ था।

अन्य प्रान्त

बम्बई के साथ-साथ गुजरात भी १९४२ के जन-आन्दोलन में किसी से पीछे नहीं रहा। सरदार पटेल और महात्मा गान्धी को जन्म देने वाले गुजरात में ९ अगस्त की दोपहर से सब मिलों में हड़ताल हो गई।

अहमदाबाद, कलोल, वीरमगाम, नडियाद, पलामेंक और बड़ोदा में मुकम्मिल हड़तालें रहीं। पेशवा और छत्रपति शिवाजी के महाराष्ट्र ने भी इस आन्दोलन में पर्याप्त योग दिया।

सितारा की सरकार

सितारा (बम्बई) में तो अभी तक दमन जारी रहा। वहाँ की जनता ने एक समानान्तर 'पत्री सरकार' की स्थापना करली थी। जिसमें लगभग ७०० गाँव थे। इस सरकार का एक गुप्तचर विभाग भी था, और एक अदालत भी थी। सरकार ने वहाँ पर जो-जो दमन किये वे सब रोमांचकारी हैं। १९४५ के अन्त तक वहाँ पर दमन होते रहे, परन्तु सरकार अपने उन पैशाचिक कार्यों को छिपाये रही।

सीमा-प्रान्त

सीमा-प्रान्त भारत की सीमा पर एक सजग जागरूक प्रहरी के रूप में है। सरकारी सैन्सर की रक्षा में हमें उन दिनों सीमा-प्रान्त के जन-आन्दोलन के सम्बन्ध में मालूम नहीं हो सका था, परन्तु इस सीमान्त गान्धी के कथनानुसार नेताओं की गिरफ्तारी के बाद सीमान्त के नेताओं ने लोगों को अहिंसात्मक आन्दोलन करने का आदेश दिया था। परिणामस्वरूप ख़ुदाई खिदमतगार स्वयंसेवकों ने अपने नेताओं के नेतृत्व में सरकारी कचहरियों और अदालतों पर धरने दिये। इसी में ही काफ़ी ख़ुदाई खिदमतगार और कांग्रेसी-नेता गिरफ्तार कर लिये गये। यह एक विशेषता की बात है कि सीमान्त के लोगों का आन्दोलन अन्तिम दम तक पूर्ण अहिंसक रहा।

राजधानी में

भारत की राजधानी दिल्ली में पोस्टरों और दूसरे साधनों से नेताओं की गिरफ्तारी का समाचार मिल गया था। घण्टाघर के पास निहत्थी जनता ने पुलिस की गोलियों का सामना किया। १२ अगस्त को रेलवे अकाउण्ट्स क्लीयरिंग आफिस, जो 'पीली कोठी' के नाम से प्रसिद्ध था,

जला दिया गया। इन्कम टैक्स के दफ़्तर, पोस्ट आफिसों को भी क्षति पहुँचाई गई। जनता का रोष जब बढ़ता ही गया तो विवश होकर अधिकारियों ने गोरा-पल्टन बुलाई। उसने अन्धाधुन्ध गोलियों की वर्षा की, जिससे भय और आतङ्क फैल गया। दिल्ली प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री जुगलकिशोर खन्ना और श्रीमती अरुणा आसफअली फ़रारी की अवस्था में काम कर रहे थे। श्रीमती अरुणा आसफअली ने इस आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया, दिल्ली में लगभग १५० व्यक्ति गिरफ़्तार किये गये।

पंजाब में प्रदर्शन हुए, जुलूस निकाले गये, जलसे और हड़तालें हुईं, किन्तु फिर भी वहाँ की जनता का पूरा सहयोग न मिल सकने के कारण वहाँ पर आन्दोलन सक्रिय रूप धारण न कर सका।

देशी राज्यों में भी

अगस्त-क्रान्ति की चिनगारी से देशी राज्य भी अछूते न रह सके। उड़ीसा-प्रान्तीय लोक-परिषद् के मन्त्री श्री सारंगधरदास ने अपने वक्तव्य में बताया है कि १९४२ का संघर्ष देशी राज्यों में भी फैला, परन्तु उस आन्दोलन को राजाओं ने अँग्रेजों की सहायता से तुरन्त कुचल दिया। धनकानल, नीलगिरी और तालचर में गोलियाँ चलाई गईं। सैकड़ों व्यक्ति जेलों में ठूँस दिये गये। तालचर में घायलों की संख्या ५०० से अधिक थी। बनारस राज्य में कम अत्याचार नहीं हुए। वहाँ पर १५ स्थानों में गोलियाँ चलाई गईं, जिनमें २७ मरे और ८० घायल हुए। गोली लग जाने से दो आदमियों के पैर और एक आदमी का हाथ बिलकुल अलग हो गये। सारे राज्य में लगभग ५००० व्यक्ति नजरबन्द किये गये। १२० पर मुक़द्दमा चला, जिनमें से ३ को फाँसी और १६ को आजीवन कारावास तथा ३५ को विविध सजायें मिलीं। १८ व्यक्तियों को पेड़ से लटका कर बेंत लगाये गये।

सारांशतः अगस्त-आन्दोलन देश-व्यापी था। इस आन्दोलन के फलस्वरूप हुए भारी दमन की अग्नि-परीक्षा में तपकर हमारा राष्ट्र

बहुत ही प्रबल और शक्तिशाली होकर निकला है। १९२०, १९३०, १९३२, १९४१ और १९४२ के संघर्षों में से गुजरते और मोर्चे-मोर्चे पर फतह करते हुए हम आज 'आजादी के द्वार पर' खड़े हैं। स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, न्याय और सत्य हमारे साथ है, अहिंसा हमारा साधन एवं पथ है। महात्मा गान्धी से युग-पुरुष हमारे पथ-प्रदर्शक हैं, नेहरू, पटेल और जयप्रकाशनारायण जैसे हमारे सारथी हैं, फिर क्यों न हमारी विजय होगी ?

१०

आज़ादी के द्वार पर

पिछले चार वर्ष

कांग्रेस के पिछले चार वर्षों का इतिहास उसके त्याग, बलिदान और साहस की रोमांचकारी घटनाओं से भरा पड़ा है। देश की आँखों के आगे अगस्त १९४२ के आन्दोलन की तस्वीर आज भी कल की घटनाओं की तरह नाच रही है। आन्दोलन की विस्तृत कहानी तो पाठक पिछले पृष्ठों में पढ़ चुके हैं। यहाँ तो हमें ४२ के बाद की घटनाओं पर विचार करना है। चर्चिल, एमरी और वेवल की जो सरकार ८ अगस्त का प्रस्ताव वापिस लिये जाने पर ही समझौता करने की बात सोचती थी उसे अब झुकना पड़ा। प्रस्ताव वापिस नहीं लिया गया और 'भारत छोड़ो' का घोष 'एशिया छोड़ो' के रूप में बदल गया। साथ ही यह भी माँग की गई कि यदि एक वर्ष में एशिया नहीं छोड़ा गया तो हम फिर दुनिया को ही छोड़ जाने की अँग्रेजों से माँग करेंगे। देश के सभी नेता जब सींखचों के अन्दर थे तो यूरोपीय युद्ध तेजी पर था; परिणामस्वरूप भारत की खाद्य-स्थिति अत्यन्त नाजुक अवस्था में जा पहुँची।

बंगाल का अकाल

कांग्रेसी-नेता जब जेलों में ही थे कि देश के एक महत्त्वपूर्ण भाग बंगाल में अन्न-वस्त्र की अत्यन्त कठिनाई होने लगी और स्थिति इस अवस्था तक पहुँची कि वहाँ अकाल पड़ गया। सरकार उसका कोई उचित प्रबन्ध न कर सकी और फिर भी खाद्यान्न तथा वस्त्रादि भारत से बाहर भेजे जाते रहे। सरकारी अधिकारी अनेक प्रकार के आश्वासन

देते हुए समय काटते रहे। परिणाम यह हुआ कि यहाँ लोग भूखों मरने लगे। नौबत यहाँ तक पहुँच गई कि लोगों के तन ढकने तक को कपड़ा नहीं मिलता था। खाद्यान्न की अत्यन्त कमी हो गयी। भुखमरी के साथ-साथ अनेक प्रकार की बीमारियों का प्रकोप भी प्रारम्भ हो गया। इसी कारण हज़ारों की तादाद में अकाल मृत्यु होने लगीं। जहाँ इस प्रकार जनता में मृत्यु का ताण्डव हो रहा था, ऐसे अवसर पर विदेशी अफ़सरों के आमोद-प्रमोद एवं उपयोग के लिए विदेश से शराब व अन्य वस्तुएँ भारत में आ रही थीं। उस समय बंगाल की निरीह भूखी जनता के लिए पौष्टिक खाद्यान्न, दवा-दारू और वस्त्रादि की भारी आवश्यकता थी। जहाँ बंगाल में अन्न की इस प्रकार कमी थी, वहाँ पर हमें कहीं-कहीं से सौ-सौ और हज़ार-हज़ार मन खाद्यान्न के सड़ जाने या व्यवहार में न लाने लायक़ होने से उसे जला देने या और किसी तरीक़े से उसे नष्ट कर देने का समाचार मिलता था। और तो और सम्राट् के प्रतिनिधि जिस वायसराय पर भारत का भार प्रत्यक्ष रूप से था, उन्होंने भी कभी अकाल के दिनों में बंगाल का दौरा कर वहाँ की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न न किया। ऐसी अवस्था में सच्ची सरकार का क्या कर्त्तव्य है, यह प्रत्येक विचारशील व्यक्ति बतला सकता है। एक ओर तो देश की वीर-प्रसू भूमि में भूख और महामारी का नग्न ताण्डव हो रहा था दूसरी ओर राष्ट्र के कर्णधार नेता जेल के सींखचों के पीछे बन्द थे।

नेताओं की रिहाई

१९४५ में वायसराय लार्ड वेवल लन्दन गये और वहाँ पर ब्रिटिश सरकार के सदस्यों के साथ परामर्श करके एक मिशन लेकर भारत लौटे और इसी वर्ष जून में आपने इसके लिए देश के विभिन्न दलीय नेताओं के साथ परामर्श भी किया। अन्त में आपने शिमला-सम्मेलन में कांग्रेस मुस्लिम लीग और दूसरी संस्थाओं को आमंत्रित किया। सम्मेलन के पूर्व ही कांग्रेस-कार्य-समिति के समस्त सदस्य जेलों से रिहा कर दिये गए। गाँधीजी तो लगभग १ वर्ष पूर्व ही ५ मई १९४४ को जेल से रिहा हो

चुके थे। गान्धीजी के निरन्तर प्रयत्न करने पर ही लार्ड वेवल लन्दन जाने को विवश हुए थे। यह सब तो ठीक था; परन्तु शिमला-सम्मेलन में जहाँ मुसलिम लीग को आमंत्रित किया गया वहाँ हिन्दू-महासभा को भी आमन्त्रित करना आवश्यक था, परन्तु ऐसा न किया गया। मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मि० जिन्ना के कथनानुसार कांग्रेस एक विशुद्ध हिन्दू संस्था है। संभवतः यही समझकर हिन्दू महासभा को सम्मेलन में निमंत्रित न करके कांग्रेस व मुसलिम लीग को शासन व्यवस्था में समानता का अधिकार दिया गया हो। कांग्रेस के लिए इस स्थिति में शिमला-सम्मेलन में भाग लेना अत्याधिक था अपमानजनक था; परन्तु दुनियाँ को यह दिखलाते हुए कि जो कांग्रेस हिन्दुस्तान के सभी संप्रदायों की एक मात्र राष्ट्रीय प्रतिनिधि संस्था है, उसके साथ ब्रिटिश सरकार का ऐसा व्यवहार होने पर भी वह भारतीय स्वतंत्रता के लिए समझौता करने के लिए तैयार है। लार्ड वैवेल ने भी अपनी घोषणा में कहा कि जो भी संस्था इसमें रोड़े अटकायगी, उसका बहिष्कार कर दिया जायगा, परन्तु इसका परिणाम कुछ और ही निकला। जिन्ना ने ऐसी दुलत्ती झाड़ी कि वायसराय लार्ड वेवल ब्रिटिश हाई-कमाण्ड तक पहुँच कर भी उसका समाधान न कर सके। परिणाम यह हुआ कि वे इस सारी आकस्मिक स्थिति का दोष अपने ऊपर ले लोगों को सन्तुष्ट करने की चेष्टा करने लगे।

वेवल-योजना विफल

वेवल-योजना विफल हो गई, परन्तु दुनियाँ को यह समझते देर नहीं लगी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कहाँ तक आगे बढ़ने के लिए तैयार है और ब्रिटिश सरकार-भारत के संबंध में किस प्रकार की नीति अख्तियार करना चाहती है। यद्यपि इस योजना-विफलता का सारा उत्तरदायित्व लार्ड वेवल ने अपने ऊपर लिया है, परंतु यह सूर्य की भाँति स्पष्ट है कि यह जिन्ना का हठधर्मी है। पहले-पहल सम्मेलन की प्रगति के जो समाचार पत्रों में छपे थे, उनसे यह धारणा बन गई थी कि यदि मि० जिन्ना किसी बात पर राजी न भी हुए तो लार्ड वेवल कोई

न कोई मार्ग निकाल कर ही रहेंगे। जिन्ना के आचरण पर गान्धीजी के कहे गये शब्द सदा स्मरणीय रहेंगे। उन्होंने १२ जुलाई को पांसगनी में कहा था—"यदि श्री जिन्ना या अधिकारी मेरा सुझाव स्वीकार नहीं करते तो मैं इसे महान दुर्भाग्य समझूँगा। उससे यह प्रकट होगा कि इन दोनों में से कोई भी इस अवसर पर भारत को वास्तव में स्वतंत्र होने और स्वाधीनता एवं जनता की लड़ाई जीतने में उसे पूरा हिस्सा देना नहीं चाहते। मेरी यह धारणा है कि जिन्ना इस मार्ग में बाधक नहीं हैं।"

नेहरूजी को निराशा

शिमला-सम्मेलन की विफलता पर निराशा एवं खेद प्रकट करते हुए नेहरूजी ने उस समय कहा था कि वास्तव में संघर्ष तो थी ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रीयता में; परन्तु अपने स्वार्थ-साधन के लिए सरकार ने साम्प्रदायिकता को अनुचित महत्व दे डाला। आपने कहा—"धार्मिक फ़िर्क़ों के रूप में राजनीत की कल्पना जनतन्त्र या राजनीति और अर्थनीति की आधुनिक धारणा के साथ बिलकुल असम्भव है......इस दृष्टि से किसी भी अन्य दल की अपेक्षा कांग्रेस का दृष्टिकोण राजनीतिक, अर्थनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय मामलों में आधुनिक है। मुस्लिम लीग या कोई भी अन्य साम्प्रदायिक संस्था न केवल एक ख़ास फ़िर्क़े का दावा ही पेश करती है; बल्कि उसे मध्ययुगीन ढङ्ग से भी पेश करती है। इस दृष्टिकोण का मतलब है, अब तक भारत में जो राजनीतिक व अर्थनीतिक विकास हुआ है; उसे नजर अन्दाज कर भारत में फिर एक मध्ययुगीन ढाँचा खड़ा करना......पर साधारणतया आज देशों की मध्ययुगीनता और जनतन्त्र में से एक को नहीं चुनना है, बल्कि राजनीतिक और अर्थनीतिक जनतन्त्र अर्थात् किसी न किसी रूप में समाजवाद को चुनना है।"

वायसराय की दूसरी लन्दन यात्रा

शिमला-सम्मेलन की विफलता के बाद भी लार्ड वेवल भारतीय

समस्या के समाधान के लिए प्रयत्नशील रहे। ब्रिटेन में मजदूर-दल का मंत्रि-मण्डल बना और भारत के राजनीतिक वातावरण में इससे फिर आशा दिखाई देने लगी। १५ अगस्त १९४५ को जब वहाँ के बादशाह ने नई पार्लमेंट का उद्घाटन करते हुए निम्न वक्तव्य दिया तो भारतीयों के मन में और भी आशा बँध गई, "भारतीय जनता से किये गये वायदों के अनुसार मेरी नई सरकार भारतीय नेताओं से मिलकर शीघ्र ही वहाँ पर स्वशासन क़ायम करने के लिए शक्ति भर प्रयत्न करेगी।" यह भूलने वाली बात नहीं। पाठकगण १८५७ के इतिहास पर दृष्टिपात करें। तब भी मलका विक्टोरिया ने ऐसी ही घोषणा की थी और तब से लेकर बराबर ऐसी ही घोषणायें ब्रिटिश सरकार की ओर से हो रही हैं। तीन सप्ताह बाद लन्दन से लौटकर लार्ड वेवल ने १९ सितम्बर १९४५ को अपने नये मिशन की घोषणा की। इस पर २१ सितम्बर को बम्बई की कांग्रेस-महासमिति की बैठक में विचार किया गया। इसे भी कांग्रेस ने क्रिप्स-योजना को ही नये लिफाफे में रखा हुआ कहा। अतः कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास करके वेवल-प्रस्ताव को बिल्कुल असन्तोषजनक बतलाया और इसकी कड़ी आलोचना की।

आज़ाद फौज की गतिविधि

कांग्रेस अभी इसी योजना में व्यस्त थी कि अचानक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस द्वारा विदेश में सामाजिक आज़ाद-हिन्द-फौज के अफ़सरों पर लाल क़िले में मुकदमा चलाया गया। समस्त देश ने एक स्वर से इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। कांग्रेस ने इन अफ़सरों की पैरवी का प्रबन्ध अपनी ओर से किया। श्री भूलाभाई देसाई, श्री जवाहरलाल नेहरू व श्री आसफ़ अली आदि महानुभावों ने कांग्रेस की ओर पैरवी की और परिणाम यह निकला कि आज़ाद फौज के अफ़सर ढिल्लन, सहगल और शाहनवाज़ लाल किले से रिहा कर दिये गये। इनकी रिहाई के बाद शेष सभी बन्दियों की रिहाई व उन पर से मुक़दमा उठाने के लिए कांग्रेस प्रयत्नशील रही और वे भी सब छूट गये।

फिर कौंसिल-प्रवेश

शिमला-सम्मेलन की विफलता के बाद कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न को लेकर कांग्रेस के विविध क्षेत्रों में बहस चली। परिणामस्वरूप कौंसिल-प्रवेश का निर्णय एक बार फिर किया गया। चुनाव हुए और फिर कांग्रेसी उम्मीदवार धारा-सभाओं में बहुमत में गये। इस बार के चुनावों ने एक बात स्पष्ट कर दी कि जनरल सीटों से कांग्रेस के मुकाबले में सब मिलाकर विरोधियों को ५ प्रतिशत वोट भी नहीं मिले। मुस्लिम सीटों से मुस्लिम लीग को कामयाबी अवश्य हुई, परन्तु इस चुनाव ने उसको मुसलमानों की प्रतिनिधि-संस्था कहा जाने के दावे को चकनाचूर कर दिया। जिस पंजाब में मुस्लिम लीग के सबसे अधिक सदस्य हैं, वहाँ मुस्लिम लीग के उम्मीदवारों को ६७६७६१ वोट मिले। इसके विपरीत अहरार, यूनियनिस्ट, जमय्यत और खाकसार उम्मीदवारों को १३६६४११ वोट मिले। और सब प्रान्तों में प्राय: कांग्रेसी उम्मीदवारों को ही सफलता मिली।

कांग्रेसी-मंत्रि-मण्डल

दूसरी वेवल-योजना असफल होने के बाद 'कैबिनेट मिशन' ने समस्त भारत का दौरा किया और वह भारत की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करके भारत से लौटा। कैबिनेट मिशन जो योजना भारत के स्वायत्त शासन के लिए लाया था, उससे सब नेता तो सहमत नहीं हुए; परन्तु कुछ संशोधनों के उपरान्त उससे सहयोग करने का कांग्रेस ने वचन दे दिया। परिणामस्वरूप भारत के जिन ८ प्रान्तों में पहले कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल थे वे ज्यों-के-त्यों सङ्गठित हो गये। दु:ख की काली और अँधेरी रात बीत गई और सुख के स्वर्ण-विहान की लालिमा भारत के भाग्य-क्षितिज पर छा गई।

राजा महेन्द्रप्रताप का आगमन

इस बीच एक विशेष नई घटना घटी। ३१ वर्ष के लम्बे प्रवास के पश्चात् सुप्रसिद्ध देशभक्त राजा महेन्द्रप्रताप फिर अपनी मातृभूमि

भारत में आये। जब २० दिसम्बर १६१४ को एक क्रान्तिकारी दल के साथ उन्होंने भारत छोड़ा था, तब वे २८ वर्ष के नवयुवक थे। उस समय उनके मस्तिष्क में भारत की ग़ुलामी के प्रति घोर वेदना तो थी ही साथ ही न जाने कितनी क्रान्तिकारी योजनायें भी थीं। लगातार ३१ वर्ष तक वे बाहर रहे, परन्तु भारत की ग़ुलामी ने उन्हें सदैव बेचैन किये रक्खा और इस अभिशाप को दूर करने के लिए वे हिटलर, क़ैसर, लेनिन तथा अफ़गानिस्तान के अमीर आदि कई सज्जनों से मिले; परन्तु किसी ओर से भी उन्हें सहायता न प्राप्त हुई। आपने भारत लौटकर कांग्रेस के प्रति जो श्रद्धांजलि प्रकट की है, वह सदैव इतिहास में गौरव के साथ पढ़ी जायगी। १३ अगस्त १६४६ को वर्धा में आपने कहा—

"मैं मृत्यु पर्यन्त कांग्रेस का सेवक रहना चाहता हूँ। मुझे कोई चिन्ता नहीं कि मानव-निर्मित कांग्रेस के नियम इसकी अनुमति देते हैं या नहीं। मैं अन्य किसी ऐसे राजनीतिक दल को नहीं देखता जो संपूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व करता हो।"

वाणी नहीं घूँसा

१६४२ के बाद वाली कांग्रेस वाणी वालों की नहीं वरन् घूँसे वालों की संस्था है। जनता को सरकारी जेल, सरकारी लाठी और तोप का डर था। पहला डर १६२० में, दूसरा १६३० में और तीसरा १६४२ में निकल गया। यह १६४२ के विद्रोह का ही प्रभाव है जो आग और लहू के बीच लड़ती हुई कांग्रेस अपने लक्ष्य के पास पहुँच गई और वह पूर्ण शासन-सूत्र अपने हाथ में लेने को सन्नद्ध हुई। १६३१ में गान्धीजी चिल्ला-चिल्लाकर रह गये और भगतसिंह को फाँसी के तख्ते पर से न उतार सके। आज कांग्रेस की आवाज पर आजाद हिन्द फौज के बाग़ी सिपाही व अफसर भी छोड़ दिये जाते हैं। जिस लार्ड विलिंगडन ने महात्मा गान्धी को अपने दरवाजे पर नहीं चढ़ने दिया था, उसी विलिंगडन की सरकार का प्रतिनिधि-मण्डल सुलह-समझौता करने के लिए भारत के गाँव-गाँव की खाक छानता फिरा और 'विधान-निर्मात्री-परिषद्' तथा अन्तर्कालीन सरकार बनाने के लिए जोरदार प्रयत्न करता रहा। ये सारी बातें

कांग्रेस की बढ़ती हुई ताक़त की प्रमाण हैं, ये सभी बातें १६४२ के विद्रोह की चिनगारी हैं, जो शान्ति में भी अपना रूप दिखा रही हैं। 'भारत छोड़ो' का नारा आकाश में नहीं, प्रत्युत प्रत्येक अंग्रेज़ के मन, मस्तिष्क, प्राणों एवं हड्डी में समा गया है। इस नारे के पीछे देश ने बड़ी-बड़ी कुरबानियाँ की हैं। न जाने कितने नौजवान मौत के घाट उतारे गये, न जाने कितनी माताओं की कोख और कितनी पत्नियों की माँग सूनी हो गई। इसका ही परिणाम है कि आज कांग्रेस आज़ादी के द्वार पर खड़ी है। कौन कहता है कि कांग्रेस कमज़ोर है? कांग्रेस में अब वह बल आ गया है कि इसकी एक ज़ोरदार कोशिश पर ही विरोधी दुम दबाकर भाग निकलेगा। बस एक बार सबके मिलकर अँगड़ाई लेने भर की देर है। ग़ुलामी की तीलियाँ चटककर चकनाचूर हो जायँगी।

११

अन्तर्कालीन सरकार

२ सितम्बर

कांग्रेस व भारत की स्वाधीनता के इतिहास में २ सितम्बर का स्थान भी एक विशेष महत्त्वशाली है। यह उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि २६ जनवरी, १३ अप्रैल और ६ आगस्त। इस २ सितम्बर को भारत के हृदय-सम्राट् पं० जवाहरलाल नेहरू ने अन्तर्कालीन सरकार का नेतृत्व भारत का शासन-संचालन करने के लिए अपने हाथों में लिया। लगभग दो शताब्दी के बाद यह पहला अवसर है, जब कि दिल्ली में जनता के प्रतिनिधियों की सरकार स्थापित हुई है। साधारण अवस्था में यह अवसर बहुत प्रसन्नता का था, भारत के कोने-कोने में दिवाली मनाई जाती। जो कांग्रेस ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सदा जोर-दार संघर्ष करती रही, जिसकी समस्त शक्ति अब तक इस सत्ता को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए उतारू थी, उसी संस्था के अग्रणी नेताओं ने आज ब्रिटिश-सरकार के एक मात्र प्रतिनिधि वायसराय के साथ शासन-भार सँभाल लिया।

गृह-युद्ध के काले बादल

अन्तर्कालीन सरकार की बागडोर देश के हाथ में आते ही समस्त भारत के वायुमण्डल पर इसकी एक घोर प्रतिक्रिया-सी हुई है और परिणाम यह हुआ है कि सर्वत्र इस विपरीत आशंका, फूट, निराशा एवं गृह-युद्ध के काले बादल मँडरा रहे हैं। जवाहरलालजी की उस घोषणा से भी गृह-युद्ध की यह घटा दूर नहीं हुई जो उन्होंने आल इण्डिया रेडियो से प्रथम प्रधान मन्त्री की हैसियत से की है। यह सच

है कि जनता अभी यह अनुभव नहीं कर सकती कि वेवल की छत्र-छाया में राष्ट्रीय सरकार क्या कार्य कर सकेगी ? क्रान्ति-द्वारा यदि ब्रिटिश नौकरशाही को उखाड़कर दिल्ली के वायसराय-भवन पर तिरङ्गा झंडा गाड़ दिया जाता तो जनता में आज दूसरा ही उत्साह होता। हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष की काली घटा को देश की आज़ादी की आँधी छिन्न-भिन्न कर देती। उस समय जिन्ना जैसे क्रान्ति-विरोधी और प्रगति-विरोधी मनुष्यों का पता भी न लगता। आज तो हमारा झण्डा अँग्रेजों की दया पर ही फहरा रहा है। आज की राष्ट्रीय सरकार की दीवार समझौते और सन्धि-वार्ता की नींव पर खड़ी हुई है। जैसे-जैसे कांग्रेस का स्वातन्त्र्य-आन्दोलन जोर पकड़ता गया, वैसे ही वैसे सुधार भी किश्तों के रूप में मिलते गये। मार्ले-मिण्टो सुधार, मान्टफोर्ड-रिफार्म्स, १६ का शासन-सुधार, व सन् ३० के जन-आन्दोलन के बाद लन्दन में गोलमेज-परिषद् बुलाई गई और फलस्वरूप ३५ का विधान आया। उसके बाद अगस्त की क्रान्ति का विधान। क्रिप्स मिशन आया और चला गया। बाद में कैबिनेट मिशन आया और फिर कांग्रेस, मुस्लिम लीग और सरकार के बीच वार्ता शुरू हुई। इस राजनीतिक शतरंज के दाव-पेंच में मुस्लिम लीग उस समय नाकामयाब रही और कांग्रेस को अपनी सरकार स्थापित करने में सफलता मिली। किन्तु अब बाद में मुस्लिम लीग भी अन्तर्कालीन सरकार में सम्मिलित हो गई, परन्तु हिन्दू-मुस्लिम-भेद अब भी बना है।

इस भेद का कारण

आखिर इस भेद का कारण क्या है ? ज़रा इस पर भी गम्भीरता से विचार किया जाय। क्या यह कोरा शतरंज का दाव-पेंच था, जिसमें कांग्रेस जीत गई। आज तक ब्रिटिश-साम्राज्यशाही इस ही कारण भारत का शासन करने में सफल हुई है कि उसका सदा से यह ध्यान रहा है कि जिस प्रकार भी हो हिन्दू-मुस्लिम-भेद को क़ायम रक्खा जाय। यह हमें लेडी मिंटो की डायरी व अन्य प्रामाणिक सूत्रों से मालूम होता

है। जैसे-जैसे कांग्रेस की शक्ति बढ़ती गई, अँग्रेजों ने उचित-अनुचित का विचार छोड़कर मुसलमानों का पक्षपात किया। सर सैयद अहमद खाँ के समय से लेकर आज तक का इतिहास हमें यह बतलाता है। सर्व श्री जे० बी० सैण्डरलैंड, रैम्जे मैकडानल्ड तथा अन्य विदेशी विद्वानों की पुस्तकों में लिखित तथ्यों से इसी बात की पुष्टि होती है। इस सम्बन्ध में एक निष्पक्ष अमेरिकन पत्रकार। कहता है—"अँग्रेजी साम्राज्यशाही की भारत में दो पत्नियाँ हैं—हिन्दू और मुसलमान। मुस्लिम पत्नी उसे अधिक प्यारी है।

अंग्रेजों की इस मित्रता का कारण स्पष्ट था। कांग्रेस के बढ़ते हुए जन-बल से उन्हें खतरा था। स्वतंत्रता के पावन ध्येय को विघटित करने के लिए वे मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रखना चाहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानों के सम्बन्ध में कांग्रेस ने दूरदर्शिता से काम लिया है। किन्तु समय-समय पर अंग्रेज मुस्लिम राजनीतिज्ञों के सहारे हिन्दू और मुसलमानों में भेद क़ायम रखने में सफल रहे। मैकडोनल्ड एवार्ड का अर्थ ही था कि कांग्रेस के साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चे से मुसलमानों को अलग हटाकर उन्हें अंग्रेजों का दोस्त बनाना। बड़े-बड़े राष्ट्रवादी मुसलमानों की उपेक्षा करके अङ्गरेज उन्हीं मुस्लिम-नेताओं को बढ़ावा देते रहे जो कट्टर साम्प्रदायिक, संकुचित मनोवृत्ति वाले, प्रगति-विरोधी एवं प्रतिक्रियावादी थे। यह मुसलिम नेता राष्ट्रीय मोर्चे के खिलाफ़ साम्राज्यशाही की मदद करने के पुरस्कार में मुसलमानों के लिए रियायतें एवं संरक्षण प्राप्त करते रहे। यही कारण है कि जिन्ना अपने एक वक्तव्य में अफ़सोस जाहिर कर रहे थे कि पिछली लड़ाई में जहाँ कांग्रेस ने अङ्गरेजों के खिलाफ़ मोर्चा लिया वहाँ मुस्लिम लीग ने बिलकुल नहीं .....पर विचारणीय बात है कि अङ्गरेजों के मन में कांग्रेस के प्रति सहानुभूति क्यों उत्पन्न हुई ?"

नया परिच्छेद

अंग्रेजी शासन-काल में मुसलमानों के प्रति उपेक्षा की नीति एक

नया परिच्छेद है। अङ्गरेज कैबिनेट-मिशन की वार्ता के कांग्रेस द्वारा नामंजूर कर दिये जाने पर मुस्लिम लीग को अन्तर्राष्ट्रीय सरकार क़ायम करने के लिए निमन्त्रित कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे मुसलिम लीग से अपनी पुरानी मुहब्बत को भूल गये। अवसर मिलते ही फिर भी कांग्रेस को ही उन्होंने अन्तर्कालीन सरकार क़ायम करने के लिए आमन्त्रित किया। अंग्रेजों की इस बदलती हुई नीति का कारण अभी प्रकट नहीं हुआ।

नींव हिल गई

इस महायुद्ध ने ब्रिटिश साम्राज्य की आर्थिक नींव को जड़ से हिला दिया है। दूसरे राष्ट्रों को तो छोड़िये, ख़ुद हिन्दुस्तान का बहुत बड़ा कर्ज़ा उसके कन्धों पर लदा हुआ है। आज ब्रिटेन के सामने सबसे बड़ा संकट उपस्थित है। उसे अपनी हस्ती क़ायम रखने के लिए अपने टूटे उद्योग को नये ढङ्ग से सँभालना है। आज तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति अधिक-से-अधिक उपनिवेश प्राप्त करने की रही है। हिन्दुस्तान के विरोध का सामना एक मोर्चे पर तो वह बन्दूक, जेल, फाँसी आदि से करता था और दूसरी ओर हिन्दुस्तानी पूँजीवाद का मुँह चुप करने को थोड़ी-थोड़ी क़िस्त में सहूलियतें देता था। हिन्दुस्तानी 'बूर्जुआ वर्ग' वास्तव में अंग्रेज़ी पूँजी का छोटा हिस्सेदार रहा है और यही कारण है कि हिन्दुस्तानी क्रान्ति-आन्दोलन की आकांक्षाओं से वह सदा ही दूर रहा है।

साम्राज्यवाद की रीढ़ है पूँजी; जिसकी रक्षा और उपयोग के लिए राजनीतिक शक्ति का प्रयोग होता है। ब्रिटेन की यह रीढ़ टूट चुकी है। आज वह क़र्ज़ से लदा है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी जेल से छूटते ही यह एलान किया था कि ब्रिटिश-साम्राज्यवाद भूतकी वस्तु हो चुकी। एम० एन० राय तक ने भी यह कहा था कि साम्राज्यवाद अपनी मृत्यु की साँस ले रहा है।

ब्रिटेन के इतिहास में यह सबसे बड़ा संकट-काल है। उसके सामने

दो रास्ते हैं। उसके पास टैंक, जहाज, तोप मेशीनगन और फ़ौज है उसका खुला उपयोग करके वह लूट-खसोट कर राज्य क़ायम रख सकता है और शायद उसके बल पर वह अपनी टूटी हुई आर्थिक अवस्था को संभालने का प्रयत्न भी कर सकता है। चर्चिल की सरकार शायद यही करती। किन्तु आज की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में यह सम्भव नहीं। व्यापार की उन्नति के लिए शान्त वातावरण आवश्यक है। आज की राजनैतिक चेतना में हिन्दुस्तान की आकांक्षाओं और उसके उचित स्वार्थों के विरुद्ध उसकी इच्छा के न होते हुए भी उस पर चीजें लादी नहीं जा सकतीं। आज कांग्रेस की शक्ति उस सतह तक पहुँच गई है कि वह सरलता से बगावत कर सकती है, उस स्थिति में व्यापारिक उन्नति होनी सर्वथा असम्भव है।

हिन्दुस्तानी पूंजीवाद से मैत्री

ऊपर के विश्लेषण से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अब ब्रिटेन के सामने एक मात्र संभव मार्ग यही है कि वह हिन्दुस्तानी पूँजीवाद से मैत्री स्थापित करे और जहाँ तक सम्भव हो उसे सुविधायें दे। आज जहाँ राजनीतिक शक्ति ब्रिटिश नौकरशाही के हाथों में है, आर्थिक शक्ति वहाँ से खिसक गई है और इन दिनों भारतीय पूंजीवाद का भी हाथ ऊपर हो गया है। इसलिए यह अनिवार्य है कि ब्रिटिश पूँजीवाद और भारतीय पूँजीवाद में मैत्री स्थापित हो। भारतीय पूँजीवाद का प्रभाव कांग्रेस पर बहुत अधिक है। इस सन्धि से कांग्रेस का विरोध भी शान्त हो सकता है और इसके लिए यह आवश्यक था कि कांग्रेस को अधिकार दिया जाय। यही कारण है कि एक ओर बिरला, बालचंद हीराचन्द, लाला इत्यादि पूँजीपतियों से काइजर न्यूफिल्डस तथा अन्य ब्रिटिश पूँजीपतियों का सम्बन्ध स्थापित हो गया है। यह सम्बन्ध कांग्रेस को राजनैतिक अधिकार दिये बिना निभना सर्वथा असम्भव है। इससे सारी स्थिति स्पष्ट है, कि इस गठ-बन्धन से पूर्व भारत के सभी पूँजीपति एक ओर से तो कांग्रेस का पक्ष कर रहे थे और दूसरी ओर

से ब्रिटिश पूँजीवाद से गठ-बन्धन का प्रयत्न कर रहे थे। मुस्लिम लीग का प्रभाव भारतीय पूँजीवाद पर तनिक भी नहीं है, इसलिए कांग्रेस से समझौता करने में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को लाभ था, लीग की उपेक्षा की गई। यदि सच पूछिये तो अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना में भारतीय पूँजीवाद का ही हाथ है ।

तसवीर का दूसरा पहलू

इसका यह अर्थ नहीं कि मुस्लिम लीग पूँजीवाद के खिलाफ है । यह तो बहुत ही परले दर्जे की प्रतिगामी राजनीतिक संस्था है । किन्तु भारतीय पूँजीवाद पर उसका प्रभाव तनिक भी नहीं है । यदि प्रभाव है तो कांग्रेस का। इसके साथ-ही-साथ तसवीर का दूसरा पहलू भी है। जहाँ ब्रिटेन का आर्थिक स्वार्थ उसे कांग्रेस से समझौते की ओर झुकाता है, उसकी पुरानी राजनीतिक नीति और राजनीतिक स्वार्थ उसे उस दिशा में जाने से भी रोकता है। जहाँ अपनी आर्थिक नींव सुधारने के लिए ब्रिटेन को भारतीय पूँजीवाद से मिलना पड़ रहा है वहाँ ब्रिटेन कांग्रेस को पूर्णतः राजनीतिक अधिकार सौंपते हुए डर भी रहा है। वह डरता है कि कहीं कांग्रेस ब्रिटेन के सारे साम्राज्यवादी स्वार्थों को समाप्त न कर दे। यही कारण है कि लार्ड वेवल मुसलिम लीग से सम्बन्ध बनाये रखना चाहते हैं। उस असम्भव भय की आशंका से बचने के लिए वे कांग्रेस के विरुद्ध एक प्रतिगामी संगठन का रहना भी आवश्यक समझते हैं।

आज कांग्रेस का कारवाँ चौराहे पर है। एक ओर भारतीय पूँजीवाद हर प्रकार से इसके ऊपर अपना अधिकार करना चाहता है । दूसरी ओर हिन्दुस्तान की शोषित और मूक जनता कांग्रेस की ओर आशा और विश्वास की दृष्टि से देख रही है। यदि कांग्रेस भारतीय पूँजीवाद की रक्षा का कार्य-क्रम लेकर आगे बढ़ेगी तो उसे फासिज्म की ओर जाना पड़ेगा और वैसी अवस्था में भारतीय जनता को अपनी आज़ादी के लिए नया संगठन पैदा करना होगा। और यदि कांग्रेस सामाजिक क्रान्ति का

आयोजन लेकर आगे बढ़ी तो जिन्ना के साथ-साथ भारतीय पूँजीपति भी उसके विरुद्ध हो जायंगे और साथ ही देश से हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य ग़रीबी और ग़ुलामी सर्वथा दूर हो जायंगे। भारत की पुरानी शासन-व्यवस्था चली गई और नई व्यवस्था प्रतिष्ठित हो गई। देश के लिए यह परिवर्तन का युग है। वह क्रान्ति के द्वार पर खड़ा है। भारत का बच्चा-बच्चा आज से ही स्वतन्त्र भारत की कल्पना में डूबा हुआ है।

१२

खून की होली

लीग की सीधी कार्रवाई

अन्तर्कालीन सरकार बनते ही देश ने एक नवीन स्फूर्ति एवं चेतना का अनुभव किया। सब ओर खुशियाँ मनाई गईं। किन्तु अंग्रेजों की कूटनीति अन्दर-ही-अन्दर अपना काम कर रही थी। मुस्लिम लीग की अड़ंगा नीति को सदा से उसी का प्रश्रय मिलता रहा है; फिर इस बार वह क्यों चूकती? अन्तर्कालीन सरकार बनते ही समस्त देश में लीगी नेताओं की कूटनीति ने एक विचित्र वातावरण उपस्थित कर दिया। अन्तर्कालीन सरकार बनते ही ६ अगस्त को बंगाल की लीगी सरकार ने 'डायरैक्ट एक्शन डे' (सीधी कार्रवाई का दिन) मनाया और उसमें लीगी गुण्डों ने जो खून की होली खेली वह इतिहास की एक वीभत्स कहानी बन गई है। बात-की-बात में समस्त कलकत्ता नगर की शान्ति खतरे में पड़ गई और वहाँ हिन्दू-जनता को बुरी तरह सताया गया। उनकी दूकानें लूटी गईं, इमारतों को आग लगाई गई और यहाँ तक कि उनकी स्त्रियों एवं मासूम बच्चों तक को निर्दयतापूर्वक क़त्ल किया और जला दिया गया।

कलकत्ते की चिनगारी धीरे-धीरे समस्त देश में फैल गई और उसका परिणाम हमें बम्बई, प्रयाग, ढाका, दिल्ली इत्यादि में देखने को मिला। सभी स्थानों पर बेक़सूर निरीह जनता हिन्दू-मुस्लिम द्वेष की अग्नि में पतंगों की भाँति भुन गई। कलकत्ते की मुस्लिम लीगी जनता को जब कलकत्ते में हिन्दुओं से मुँह की खानी पड़ी तो वे बंगाल के गाँवों में जाकर अपनी नृशंसता का नाच दिखाने लगे।

पूर्वी बङ्गाल में

पूर्वी बंगाल में हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की आबादी अधिक है। कलकत्ते से मुँह की खाकर लीगी गुण्डे पूर्वी बंगाल के गाँवों की ओर निकल पड़े। उन्होंने वहाँ पर जो नृशंसता, पाशविकता और दुर्दमनीयता दिखलाई, वह इतिहास में सदा बुरे स्वप्न की तरह याद रहेगी। पूर्वी बंगाल के नोआखाली और टिपरा नामक इलाकों की हिन्दू जनता को बुरी तरह सताया गया। गाँव-के-गाँव जला दिये गए, हजारों की तादाद में हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया गया और बहुतेरी स्त्रियों के साथ जबर्दस्ती शादी करली गई और बहुतेरी भगा या चुराकर अन्यत्र भेज दी गईं। हजारों की तादाद में वहाँ के हिन्दू भागकर दूसरे स्थानों में आश्रय लेने के लिए आये। यह कांड कई दिनों तक इसी प्रकार चलता रहा। कलकत्ते और नोआखाली में इतना अन्तर था कि कलकत्ते में हिन्दू अधिक थे और पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की आबादी अधिक थी। कलकत्ते में मात खाये हुए क्षुभित मुसलमानों ने बंगाल के गाँवों में अल्पमत वाले हिन्दुओं के साथ खुलकर ख़ून की होली खेली।

बिहार में भी

बंगाल के समाचार जब बिहार में पहुँचे तो वहाँ की हिन्दू जनता में खलबली मच गई और यहाँ पर भी छोटी-मोटी घटनाओं को लेकर मुसलमानों को मारना, लूटना, घर जलाना आदि उसी तरह आरम्भ हो गया जिस तरह बंगाल में हुआ था। बंगाल के झगड़े की अपेक्षा बिहार का उपद्रव जल्दी सँभाल लिया गया और कांग्रेस के नेताओं के प्रयत्न से वहाँ अब शान्ति है; परन्तु बंगाल का यह भीषण रक्त-पात दबने की अपेक्षा अभी तक अन्दर-ही-अन्दर ज्वाला लिये सुलग रहा है।

बापू का प्रयाण

इन भीषण कांडों का परिणाम यह हुआ कि वन्दनीय बापू को पूर्वी

बंगाल में शान्ति-स्थापन के लिए एक लम्बी यात्रा करनी पड़ी। हिन्दू और मुसलमानों के इस खोये हुए विश्वास और सद्भाव को वापिस लाने के लिए ही आज वे नोआखाली के गाँव-गाँव में पैदल घूम रहे हैं। गांधीजी ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि "अब तक की अपनी इस ज़िन्दगी में भाई-भाई की इस ख़ूँरेज़ी से बढ़कर डरावनी कोई चीज़ मैंने देखी ही नहीं। बीस साल तक दक्षिण अफ्रीका में और तीस साल तक यहाँ हिन्दुस्तान में मैंने गहरी लड़ाई लड़ी है। लेकिन पूर्वी बंगाल की इस आपस की मार-काट ने मेरी अक़्ल गुम कर दी है। दोनों क़ौमों को हिल-मिलकर शान्तिपूर्वक रहने के लिए मैं किस तरह समझा सकता हूँ। इस एक सवाल का हल ढूँढ़ने के लिए ही मैं बंगाल में आया हूं। बंगाल एक बड़ा सूबा है। अगर क़ौमी सवाल यहाँ हल कर लिया जाता है तो वह दूसरी जगहों में भी हल हो जायगा। अगर मुझे यहाँ कामयाबी मिली तो मैं बंगाल से एक नई ज़िन्दगी लेकर लौटूँगा और अगर यहाँ कामयाब न हुआ तो ईश्वर मुझे इस दुनियाँ से उठा ले। मैं ख़ाली हाथ बंगाल छोड़ना नहीं चाहता। मेरे 'शब्द-कोष' में ना-उम्मेदी शब्द कहीं न मिलेगा।" इस प्रकार गांधीजी अपने जीवन का सबसे महान् प्रयोग कर रहे हैं।

मालवीयजी का निधन

इधर देश में यह भीषण रक्त-पात हो रहा था, उधर महामना मालवीयजी रोग-शय्या पर थे। बंगाल की इस अवस्था ने उनके मन पर भारी असर किया था। यदि पूर्वी बंगाल, कलकत्ता और अन्य नगरों में साम्प्रदायिक दंगों का यह कलुषित नृत्य न हुआ होता तो मालवीयजी दो-चार वर्ष अभी और खींच ले जाते। नोआखाली के भीषण कांड ने उनके हृदय पर मर्मभेदी प्रहार किया और १२ नवम्बर १९४६ को वे सदा के लिए हमसे विदा हो गए। उनकी मृत्यु पर गांधीजी ने कहा था—"अँग्रेज़ी में एक कहावत है, "राजा गया, राजा हमेशा जियो।' ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराज के लिए कहा जा सकता है 'मालवीयजी गये, मालवीयजी अमर हों।"

मेरठ-कांग्रेस

जैसी स्थिति और जिस शान से मेरठ-काँग्रेस होनी चाहिए थी, वैसी वह नहीं हो सकी। साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़ मेरठ तक भी आई और गढ़मुक्तेश्वर में कार्तिक-स्नान पर भयंकर दंगा हो गया। उसकी चिन-गारियाँ समीपवर्ती गाँवों में गईं और वहाँ की जनता की शान्ति एवं सुव्यवस्था खतरे में पड़ गई। गढ़मुक्तेश्वर का बदला मुसलमानों ने शाहजहाँपुर व डासना के कांड में लिया। मेरठ के इस अशान्त वाता-वरण के कारण समस्त ज़िला "बागी" घोषित कर दिया गया और ऐसा शक होने लगा कि मेरठ-काँग्रेस होगी ही नहीं। पूर्वी बङ्गाल व बिहार के कांड, मालवीयजी के निधन और मेरठ की इस स्थिति ने एक विचित्र वातावरण उपस्थित कर दिया। फिर भी काँग्रेस हुई, जो समारोह होने को था, वह सब न हो सका। किन्तु फिर भी मेरठ का यह अधि-वेशन एक विशेष महत्व रखता है। राष्ट्रपति आचार्य कृपलानी का भाषण सचमुच सामयिक था; उनके चुभते हुए व्यंगों और दूरदर्शिता ने सारे कार्य-क्रम को सजीव बनाये रखा।

तलवार का बदला तलवार से

मेरठ-अधिवेशन की स्मरणीय घटना सरदार पटेल का वह भाषण है जो उन्होंने लीग की गुण्डा-नीति की आलोचना करते हुए दिया था। उन्होंने कहा था "तलवार का बदला तलवार से लिया जायगा और मुस्लिम लीग न समझे कि वही तलवार चलाना जानती है।" सरदार पटेल की इस ओजस्वी वक्तृता से मुस्लिम लीग के आकाओं के तसमे ढीले पड़ गये। जिन विषम परिस्थितियों में मेरठ का यह अधिवेशन हुआ वह सब हमारे नेताओं के लिए चिरचिन्ता का विषय बन गई थीं। हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए अब तक किये गये कांग्रेस के प्रयत्न को जिन्ना व उनकी लीग की अड़ंगानीति ने लगभग समाप्त ही कर दिया। जो हिन्दू सत्य एवं अहिंसा के पावन सिद्धान्तों के अनुगामी तथा पोषक समझे जाते थे, वे भी अब मुस्लिम लीग की शंकाशिकता का जवाब

तलवार से देने के लिए तैयार हो गए। सरदार पटेल के उक्त भाषण से यही बात स्पष्ट झलकती है।

मेरठ में अधिवेशन के समय प्रत्येक राष्ट्र-नेता के मस्तिष्क में हिन्दू-मुस्लिमों की यह फूट ही चक्कर काट रही थी। जिसका प्रमाण मौलाना आजाद और सीमान्त गांधी के वे भाषण हैं जो उन्होंने वहाँ पर दिये। मौलाना आजाद ने कांग्रेस-जनों को चेतावनी देते हुए कहा—"सबसे पहले मेरे भाइयो अपना दिमाग़ टटोलिये। कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि आप भी इस बवा के शिकार हो गये हैं। अगर ऐसा है तो समझिये कि अब कांग्रेस मर गई। कितना ही तूफ़ान सिर पर से गुजरे कांग्रेसमैनों को अपना दिमाग़ सही रखना है।"

साम्प्रदायिक सद्‌भावना वाले प्रस्ताव पर बोलते हुए सीमान्त गांधी ने कहा "जो लोग हिन्दुस्तान का भला चाहते हैं, उसकी तरक्क़ी चाहते हैं, वे तो उन मुसलमानों को माफ़ कर देंगे, जिनके दिलों में यह ग़लत खयाल पैदा हो गया है। जो हमसे पिछड़ गये हैं हम उन्हें साथ लाने की कोशिश करें। हर सूबे में जिस फ़िरके वालों की तादाद ज्यादा है वे कम तादाद वालों की हिफ़ाज़त करें। इसके बिना यह मसला हल नहीं हो सकता।"

मेरठ कांग्रेस में मुख्य प्रश्न विधान परिषद् का था, जो ६ दिसम्बर को होने वाली थी। लीग ने अन्तर्कालीन सरकार में सम्मिलित होकर भी विधान परिषद् में सम्मिलित होने से इनकार कर दिया था। नेहरूजी ने अन्तर्कालीन सरकार में सम्मिलित होने के बाद के अपने कटु अनुभव भी जनता को सुनाये जिनमें लार्ड वेवल व लीग की कटु आलोचना के अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार की चालबाजियों का सजीव चित्र खींच दिया।

विधान परिषद् की समस्या

साम्प्रदायिक सद्‌भावना के प्रस्ताव के अतिरिक्त मुख्य समस्या मेरठ में विधान परिषद् की थी। मुस्लिम लीग ने चूँकि उसमें सम्मिलित होने से इनकार कर दिया था, इसलिये सभी नेताओं के मुख से उसी

के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ सुनने को मिला। मेरठ-कांग्रेस की विषय-समिति में बोलते हुए नेहरूजी ने कहा था—"मैं इस विधान परिषद् से विशेष सन्तुष्ट नहीं, पर हमने इसे स्वीकार किया है; अतः इसे चलायेंगे और जितना भी लाभ उठाया जा सकेगा, उठायेंगे।"

विधान परिषद् के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमें एक विहंगम दृष्टि जरा कांग्रेस के विगत इतिहास की ओर अवश्य डालनी होगी। विधान परिषद की माँग वैसे तो बहुत पुरानी है, परन्तु फैजपुर कांग्रेस में इसके सम्बन्ध में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था वह विशेष महत्वपूर्ण है। उस प्रस्ताव को दृष्टि में रखकर यदि सोचें तो अभी तक जो विधान परिषद् की घोषणा की गई है वह खिलौना मात्र है; उसमें तो स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र के आधार पर इसका गठन नहीं है। फैजपुर के प्रस्ताव की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"कांग्रेस भारत के राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे के निर्णय में किसी बाहरी सत्ता का हस्तक्षेप न मानती है और न कभी गवारा ही करेगी और ऐसे प्रत्येक प्रयत्न का भारतीय जनता असमझौतापूर्ण और संगठित ढंग से मुकाबला करेगी। भारतीय जनता एकमात्र उसी वैधानिक ढाँचे को स्वीकार करेगी, जो उसके द्वारा निर्मित हो और जिसका आधार स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र हो तथा जिसमें उसकी आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं के अनुरूप विकास करने की गुंजाइश हो।

लन्दन से बुलावा

मेरठ-कांग्रेस समाप्त ही हुई थी कि अचानक २७ नवम्बर को कांग्रेसी नेता पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, सिखों के नेता सरदार बलदेवसिंह और लीग के नेता मि० जिन्ना तथा लियाक़त अली खाँ को लन्दन से वहाँ के मन्त्रिमंडल ने बुलावा। यह बुलावा विधान परिषद् में मुस्लिम लीग के शामिल होने से इनकार कर देने के कारण आया था; क्योंकि कांग्रेस ने तो १६ मई १९४५ के वक्तव्य के अनुसार विधान परिषद् में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया था। किन्तु लन्दन में जाकर भी गुत्थी नहीं सुलझी। वहाँ पर भी जाकर नेहरू और जिन्ना

अलग-अलग होटलों में ठहरे और दोनों ने ब्रिटिश प्रधान मंत्री तथा मंत्रि-मिशन के सदस्यों से अलग-अलग बातचीत की। लन्दन की बातचीत का सार ६ दिसम्बर वाले वक्तव्य में दिया गया है।

विधान परिषद् का अधिवेशन

लन्दन जाकर भी कुछ न हुआ और अन्त में ६ दिसम्बर को विधान परिषद् का प्रथम अधिवेशन शुरू होकर ही रहा। लीग उसमें शामिल नहीं हुई और अब तक भी वह इससे अलग है। परिषद् का अधिवेशन डॉक्टर सच्चिदानन्द सिनहा की अध्यक्षता में हुआ। २९६ सदस्यों में २१० सदस्य पहले दिन उपस्थित थे। डाक्टर सिनहा ने अपने अध्यक्ष के भाषण में अमेरिका के विधान पर प्रकाश डालते हुए भारतीय-शासन-का महत्त्व बतलाया। दूसरे दिन स्थायी अध्यक्ष का नाम पेश हुआ और सर्व-सम्मति से डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद परिषद् के स्थायी अध्यक्ष मनोनीत हुए। सभी सदस्यों ने राजेन्द्र बाबू के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। अपने प्रारम्भिक भाषण में राजेन्द्र बाबू ने कहा—

"मैं जानता हूँ कि जन्म से ही इस परिषद् पर कुछ बन्धन हैं, परन्तु जो बन्धन लगे हुए हैं, उन्हें हम तोड़ सकते हैं और नष्ट भी कर सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि जहाँ आप स्वतंत्र भारत का विधान बनायेंगे वहाँ इन बन्धनों को भी तोड़ेंगे। हम संसार के सामने एक आदर्श विधान रख सकेंगे जो इस महाद्वीप में रहने वाले सभी वर्गों, संप्रदायों तथा धर्मावलम्बियों को सन्तोष प्रदान करेगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को काय, विचार तथा धर्म की स्वतन्त्रता प्रदान करेगा, जो प्रत्येक व्यक्ति को ऊँचे-से-ऊँचे पद पर पहुँच जाने का अवसर प्रदान करेगा और जो प्रत्येक क्षेत्र में पूरी समता प्रदान करेगा।"

पण्डित नेहरू का प्रस्ताव

विधान परिषद् में पास हुए प्रस्तावों में पण्डित नेहरू का वह प्रस्ताव प्रमुख है जो उन्होंने स्वतन्त्र भारत के सम्बन्ध में विधान परिषद् में प्रस्तुत किया था। यह प्रस्ताव २२ जनवरी को सर्वसम्मति से स्वीकृत

कर लिया गया। उसकी संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है। "इस प्रस्ताव में मुख्यत: तीन भाग हैं—

पहले भाग में भारत को स्वतंत्र सार्वभौम प्रजातंत्र घोषित किया गया है। एक संघ विधान बनाने की घोषणा की गई है, जिसमें ब्रिटिश भारत, देशी राज्य और अन्य इच्छुक प्रदेश—अपनी मौजूदा अथवा परिवर्तित सीमाओं के साथ-सम्मिलित किये जायेंगे। भारतीय संघ की इकाइयों को, संघ को प्राप्त अथवा प्रदत्त अधिकारों के अतिरिक्त समस्त अधिकार प्राप्त होंगे।

दूसरे भाग में समस्त भारतीय जनता को क़ानून और सर्वजनिक नीति की मर्यादा के अधीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, समानाधिकार, विचार-स्वातन्त्र्य, विश्वास, धर्म, सम्प्रदाय तथा पूजा आदि की स्वाधीनता, कार्य और संस्था-निर्माण की स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की गई है।

तीसरे भाग में अल्पमतों, पिछड़े हुए वर्णों तथा आदिवासियों को उचित संरक्षण देने की व्यवस्था है।

भविष्य कैसा है ?

यद्यपि विधान परिषद् की कार्रवाई अभी तक निर्विघ्न चली, फिर भी भविष्य कैसा है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। लीग की लंगड़ी नीति ने इस सम्बन्ध में एक विचित्र वातावरण उपस्थित कर दिया है। अब भी ब्रिटिश मंत्रि-मंडल भारतीय समस्या सुलझाने में व्यस्त है और वर्त्तमान वायसराय लार्ड वेवल के भारत से शीघ्र ही चले जाने की सम्भावना है। कुछ क्षेत्रों का यह भी ख्याल है कि लार्ड वेवल के स्थान पर दक्षिण पूर्वी एशिया की मित्र राष्ट्रीय कमान के भूतपूर्व सर्वोच्च सेनापति लार्ड माउण्ट बेटन भारत के वायसराय होंगे। इधर कांग्रेसी हाई कमांड इस प्रयत्न में है कि यदि मुस्लिम लीग विधान परिषद् में सम्मिलित नहीं होती तो अन्तर्कालीन सरकार में भी वह नहीं रह सकती। इस घोषणा से भारत में एक और नया राजनीतिक सङ्कट उत्पन्न हो गया है।

उपसंहार

विगत ६० वर्षों से कांग्रेस जो स्वातंत्र्य-संग्राम के पथ पर त्याग एवं दुख-कष्ट वरण करते हुए सुदृढ़ भाव से अग्रसर हो रही है, उससे इस देश की पीड़ित जनता को शक्ति मिली है, उसमें साहस का संचार हुआ है और आत्म-विश्वास की प्रेरणा प्राप्त हुई है। भारत के लिए कांग्रेस की यही सबसे बड़ी देन है। विशेषतः जबसे कांग्रेस का नेतृत्व गांधीजी के हाथों में आया है तब से तो अहिंसात्मक नीति और उसके आधार पर परिचालित स्वातंत्र्य-संग्राम ने इस देश की चिर पीड़ित जनता के मन में अभूतपूर्व आशा, शक्ति और स्फूर्ति का संचार किया है। कांग्रेस की इस प्रेरणा ने देश को इस योग्य बना दिया है कि वह संसार के सबसे बड़े प्रभावशाली साम्राज्यवाद के दमन, उत्पीड़न एवं संत्रास की उपेक्षा करके उन्नत मस्तक एवं उद्दीप्त हृदय लेकर अविचलित भाव से अपने अभियान-पथ पर अग्रसर होता रहे। यही कारण है कि आज कांग्रेस केवल एक राजनीतिक संस्था के रूप में ही नहीं रह गई है, प्रत्युत वह कोटि-कोटि भारतवासियों की आशा एवं आकांक्षाओं की प्रतीक बन गई है। केवल स्वदेश में ही नहीं, प्रत्युत विदेश में भी उसकी प्रतिष्ठा एवं अन्तर्राष्ट्रीय मर्यादा बढ़ गई है। भारतीय विचार-धारा में ही नहीं, प्रत्युत विश्व की भाव-धारा में भी कांग्रेस ने विप्लव ला दिया है और संसार की अन्यान्य पराधीन, पद-दलित जातियों में भी मुक्ति के लिए एक नूतन प्रेरणा जाग्रत करदी है।

राजनीतिक आन्दोलनों के अनेक आवर्त्तन-विवर्त्तनों के बाद कांग्रेस आज अजेय शक्ति लेकर भारतीय जनता के ऊपर अपना अमिट प्रभाव

विस्तार कर रही है। भारतीय जनता के लिए उसके नाम में एक जादू है। जो दीन-दरिद्र हैं वे भी अपनी टूटी झोंपड़ी की ओर देखकर यह आशा करते हैं कि कांग्रेस के आन्दोलन के प्रभाव से भारत शीघ्र ही स्वाधीन होगा और उसके भाग्य में शुभ परिवर्तन होगा। निरन्तर रोगी और दुखी, सब उस दिन की प्रतीक्षा में हैं, जब कि देश के शासन की बागडोर पूर्णतया कांग्रेस के हाथ में होगी और देश में नूतन युग का अरुणोदय होगा। मेरठ का यह कांग्रेस-अधिवेशन उसमें सत्तावन के विद्रोह की वह ओजमयी भावना भरे, जिससे समस्त संसार में क्रान्ति एक ऐसी लहर दौड़े, जिसमें देश के सब कष्ट-ताप बह जायँ।

परिशिष्ट

अन्य राजनीतिक संस्थायें

देश के राजनीतिक जागरण में जिन-जिन संस्थाओं ने काम किया है, उनमें कांग्रेस सबसे अधिक प्रभावशाली संस्था है। कांग्रेस की प्रमुखता यहाँ तक है कि उसका इतिहास स्वयं देश के जागरण का इतिहास बन गया है। इसीलिये कांग्रेस के इतिहास को पिछले अध्यायों में किंचित् विस्तार से देने की चेष्टा की गई है। फिर भी अन्यत्र कतिपय संस्थायें अवश्य हैं जो राष्ट्रीय जागरण में हाथ बटा रही हैं। उनकी जानकारी भी आवश्यक है, अतः संक्षिप्त रूप से उनका वर्णन दिया जा रहा है।

लिबरल फैडरेशन

कांग्रेस के अतिरिक्त जो संस्थायें राष्ट्रीय-जागरण में प्रेरणा दे रही हैं, उनमें सबसे पहले हम 'लिबरल फैडरेशन' का उल्लेख करेंगे। इससे यह न समझना चाहिए कि राष्ट्रीय जागरण में कांग्रेस के बाद फैडरेशन का नम्बर आता है। यह कांग्रेस से निकले हुए व्यक्तियों की एक राजनीतिक संस्था है और इस प्रकार की संस्थाओं में सबसे पुरानी है।

कांग्रेस के इतिहास में कहा जा चुका है कि नरम और गरम नाम के दो दल हो गये थे। जब कांग्रेस गरम दल वालों के हाथ में चली गई तब नरम दल वालों ने अलग होकर लिबरल फैडरेशन के नाम से इस संस्था का संगठन किया। इसके संस्थापकों में मि० सी० वाई० चिन्तामणि, सर तेजबहादुर सप्रू आदि नेता प्रमुख हैं। यह संस्था कुछ समय तक तो काम करती रही, परन्तु बाद में यह धीरे-धीरे शिथिल पड़ती गई। अब तो इसके वार्षिक अधिवेशन भी होते हुए नहीं सुन पड़ते। इस संस्था की रीति-नीति, कार्य करने की अपेक्षा वाद विवाद करने की अधिक रही है। फिर भी इसे अच्छे विचारकों का सहयोग प्राप्त रहा है।

सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी

सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं के सामने यह अड़चन सदा ही रहती है कि अपने आश्रितों को वे उनकी आवश्यकता-पूर्ति के लिए कोई आर्थिक सहायता नहीं दे सकते। इस कठिनाई का अनुभव करके स्व० गोपालकृष्ण गोखले ने 'सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी' नाम की एक संस्था की स्थापना की थी। इस संस्था में देश के तत्कालीन अनेक योग्य कार्यकर्त्ताओं को सम्मिलित किया था। इस संस्था की व्यवस्था यह है कि वह योग्य कार्यकर्ताओं को सदस्य बनाती है। जो व्यक्ति सदस्य बन जाते हैं उनकी योग्यता और आवश्यकता के अनुसार उन्हें मासिक पारिश्रमिक दिया जाता है। इससे वे अपनी आर्थिक आवश्यकता से मुक्त होकर दत्तचित्त हो सार्वजनिक कार्य कर सकते हैं। इस प्रकार के कार्यों में लोग किसी प्रकार का अपमान अनुभव न करें इसलिए प्रारम्भ से ही इसमें देश के बड़े-बड़े नेताओं, विद्वानों और कार्यकर्ताओं को सदस्य के रूप में लिया गया था। इसके द्वारा अनेक कार्यकर्त्ता महती सार्वजनिक सेवा कर रहे हैं। इसकी नीति बहुत कुछ नरम-दल वालों की-सी है। इसका प्रधान कार्यालय पूना में है और श्री हृदयनाथ कुंजरू आजकल इसके प्रधान हैं। लेकिन अब यह संस्था इतनी लोकप्रिय नहीं रही।

सर्वेण्ट्स ऑफ पीपुल सोसायटी

'सर्वेन्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी' की उपयोगिता उसकी स्थापना के थोड़े ही दिन बाद मालूम हो गई थी, परन्तु यह संस्था इतनी बड़ी नहीं थी कि इसके वे सब लोग सदस्य बन सकते, जिनको सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने की आवश्यकता है और साथ ही साथ जिन्हें अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसकी सहायता की भी आवश्यकता थी। इसलिए, और शायद इसलिए भी कि जिस ढंग से 'सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी' काम कर रही थी, उस ढंग को बदलने की आवश्यकता थी, स्व० लाला लाजपतराय ने लाहौर में 'सर्वेण्ट्स आफ पीपुल

सोसायटी' नाम से एक ऐसी ही संस्था स्थापित की। यह संस्था पारिश्रमिक आदि देने में तो 'सर्वेण्ट्स आफ इण्डिया सोसायटी' के ढंग पर ही काम करती है; परन्तु इसके कार्यकर्त्ता सार्वजनिक कार्यों में अधिक उग्र विचारों को लेकर अवतीर्ण हुए हैं। लालाजी की मृत्यु के बाद से बा० पुरुषोत्तमदास टंडन उसका सभापतित्व कर रहे हैं। इसमें भी देश के अनेक प्रतिष्ठित और योग्य कार्यकर्ता काम कर रहे हैं।

गांधी-सेवा-संघ

इसी सिलसिले में गांधी-सेवा-संघ की चर्चा भी कर लेनी होगी। यह संघ उपर्युक्त सोसायटियों की भाँति काम करता है और इसकी विशेषता यह है कि इसके द्वारा महात्मा-गांधी के आदर्शों और विचारों के अनुसार कार्य किया जाता है। प्रत्येक वर्ष इसका अधिवेशन किसी गाँव में होता है; जिसमें कार्यकर्ताओं के कार्यों की रिपोर्ट तथा विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श एवं भाषण आदि दिये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त चरखा-संघ देश में चरखे और खद्दर के प्रचार के लिए तथा ग्रामोद्योग संघ गृह-शिल्प के अभ्युत्थान के लिए विशेष रूप से कार्य करता है। इसके द्वारा भी राष्ट्रीय जागरण में प्रोत्साहन मिला है।

मजदूर-संघ

इन सब संस्थाओं में एक बात समान रूप से मिलेगी कि सब की सब राष्ट्रीय जागरण में पूर्ण दिलचस्पी के साथ काम करती आई हैं। परन्तु इसका काम बहुत संयम के साथ होता रहा है। इधर देश में पराधीनता गरीबी और अत्याचारों से पीड़ित रहने के कारण एक बड़ी विचित्र सी बेचैनी लोगों में उत्पन्न हो गई थी। देश के मजदूर और किसान विशेष रूप से अत्याचार से पीड़ित थे। अतः विशेषतः उन्हीं की सेवा के उद्देश्य से मजदूर-संघ (ट्रेड यूनियन कांग्रेस) नाम की संस्था की स्थापना की गई। यह उग्र राजनीतिक विचारों की पोषक और विशेष रूप से मजदूरों और किसानों की जागृति और उनके हितों की रक्षा के लिए उद्योग करती रहती है।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी

'मजदूर-संघ' अपनी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस से पृथक एक संस्था है। परन्तु कांग्रेस के भीतर भी लोगों में उग्र विचारों का जन्म हो चुका है। अतः उस प्रकार के विचार रखने वाले लोगों ने कांग्रेस के अन्दर ही रहकर विशेषतः मजदूरों और किसानों के लिए काम करने तथा अन्यान्य राजनीतिक कार्यों में समाजवाद का दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के अभिप्राय से 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' नाम की एक संस्था की स्थापना की। इसके द्वारा कांग्रेस के अन्दर एक वामपक्ष की स्थापना हो गई। यह वामपक्ष उग्र राजनीतिक विचारों का प्रचार करता रहता है और कभी-कभी कांग्रेस की कड़ी आलोचना भी करता है। पिछली बार जब कांग्रेसी-मन्त्रिमंडल काम कर रहे थे तब इस दल की ओर से मंत्रियों की बड़ी कड़ी आलोचनायें की गई थीं। इस दल में सर्वश्री आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश-नारायण, यूसुफ मेहरअली, डा० राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन और श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय आदि प्रमुख रूप से भाग ले रहे हैं।

फारवर्ड ब्लाक

कांग्रेस के इतिहास में यह बतलाया जा चुका है कि श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस से अलग होकर फारवर्ड ब्लाक नाम की एक संस्था की स्थापना की है। इस संस्था के द्वारा यद्यपि कांग्रेस की आलोचना विशेष रूप से आरम्भ में हुई; तथापि राजनीतिक जागरण में इसका भी प्रमुख हाथ है। किसानों, मजदूरों, पीड़ितों के हितों की रक्षा का उद्योग करके इस दल के द्वारा भी यथेष्ट राष्ट्रीय जागरण हुआ है और हो रहा है। सुभाष बाबू के भारत से बाहर चले जाने के बाद से इसके सभापति मुकन्दलाल सरकार हैं।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त दो बड़ी प्रमुख संस्थायें और भी हैं—हिन्दू सभा और मुसलिम लीग। ये संस्थायें क्रमशः हिन्दुओं और मुसलमानों के हितों पर विशेष रूप से ध्यान देती हैं। इसलिए इन

संस्थाओं की गणना साम्प्रदायिक संस्थाओं में होती है। अतः यहाँ इनका विशेष उल्लेख करना हम अनावश्यक समझते हैं।

कांग्रेस का विधान

उद्देश्य—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य भारतीय जनता का सभी उचित व शान्तिमय उपायों द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति है।

सङ्गठन—(१) साधारण सदस्य, (२) गाँव, मुहल्ला, थाना, ताल्लुका, मण्डल, तहसील, सब-डिवीजन, जिला तथा अन्य स्थानीय कमेटियाँ, (३) प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, (४) वार्षिक अधिवेशन, (५) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, (६) वर्किङ्ग कमेटी।

साधारण सदस्य—१८ वर्ष या इससे अधिक आयु का कोई भी व्यक्ति, जो कांग्रेस के उद्देश्यों में विश्वास रखता है, साधारण सदस्य बन सकता है और स्थानीय कांग्रेस कमेटी के आफिस में जो सदस्यों का खाता रहेगा, उसमें उसका नाम लिख लिया जायगा।

कांग्रेस-प्रान्त—अजमेर-मारवाड़ा, आन्ध्र, आसाम, बिहार, बंगाल, बम्बई (शहर), दिल्ली, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाकौशल, महाराष्ट्र, नागपुर, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, पंजाब, युक्त-प्रान्त, सिन्ध, तामिलनाड, उत्कल तथा विदर्भ।

डेलीगेट—नियमानुसार बनाया हुआ प्रत्येक साधारण सदस्य डेलीगेट के चुनाव में वोट दे सकेगा। प्रान्त की जन-संख्या के आधार पर प्रति लाख पर एक डेलीगेट चुना जायगा।

वर्किंग-कमेटी—वर्किंग-कमेटी के राष्ट्रपति, १३ सदस्य तथा अधिक-से-अधिक ३ जनरल सेक्रेटरी, जिनकी नियुक्ति अ० भा० कांग्रेस कमेटी के सदस्यों में से राष्ट्रपति करेगा, और एक कोषाध्यक्ष रहेगा, जिसकी नियुक्ति भी राष्ट्रपति द्वारा होगी।

वर्किंग कमेटी कांग्रेस की कार्य-कारिणी-समिति है और इसीलिए कांग्रेस एवं अ० भा० कांग्रेस कमेटी, जो नीति और कार्य-क्रम

निर्धारित करेगी वह उसे कार्यान्वित करेगी तथा उसके प्रति उत्तरदायी रहेगी।

वार्षिक अधिवेशन की व्यवस्था करने के लिए प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के डेलीगेटों से प्राप्त रक़म का पाँचवाँ भाग वर्किंग कमेटी देगी।

अनुशासन, नियम-उपनियम, जाँच आदि समस्त कार्यवाहियों का अधिकार और दायित्व वर्किंग कमेटी पर होता है।

अ० भा० कांग्रेस कमेटी—निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त इसमें वार्षिक अधिवेशनों के अध्यक्ष, भूतपूर्व राष्ट्रपति तथा कोषाध्यक्ष भी रहते हैं। सदस्यों को कमेटी की बैठक में प्रस्ताव आदि रखने, नियम बनाने एवं वर्किंग कमेटी के कार्यों की आलोचना एवं कार्यवाहियों की रिपोर्ट आदि देखने का अधिकार है।

राष्ट्रपति का निर्वाचन—१० प्रतिनिधि मिलकर किसी भी प्रतिनिधि अथवा भूतपूर्व राष्ट्रपति का नाम, उसे राष्ट्रपति चुनने की अपनी इच्छा के साथ, जनरल सेक्रेटरी के पास भेज सकते हैं। नाम भेजने की तारीख़ जनरल सेक्रेटरी निश्चित करता है। निश्चित अवधि में जो नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं, जनरल सेक्रेटरी उन्हें प्रकाशित करता है और १० दिन की अवधि में जिसको राष्ट्रपति न बनना हो, वह अपने नाम वापिस ले लें। इसके बाद शेष नामों को प्रकाशित किया जायगा तथा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को उन नामों से सूचित कर दिया जायगा। तदनन्तर वर्किंग कमेटी द्वारा निश्चित तिथि को प्रांतीय कांग्रेस कमेटी चुनाव की व्यवस्था करती है और तब प्रतिनिधि अपने वोट देते हैं।

प्रत्येक उम्मीदवार के नाम पर पड़े वोटों की गणना की सही रिपोर्ट कमेटी जनरल सेक्रेटरी को भेजती है, जो घोषित करता है कि अमुक उम्मीदवार के नाम सबसे अधिक वोट पड़े और वह चुना गया। लेकिन अधिक वोट का मतलब यह है कि वे ५० प्रतिशत से कम न हों। कम होने पर, दो ऐसे उम्मीदवारों का, जिन्हें बाकी दोनों में से अधिक वोट मिले हों, फिर से चुनाव होता है।

विषय-निर्धारिणी-समिति—वार्षिक अधिवेशन कम-से-कम दो दिन पूर्व नव-निर्वाचित राष्ट्रपति की अध्यक्षता में नव-निर्वाचित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की जो बैठक होगी, उसे विषय-निर्धारिणी-समिति कहा जाता है। पुरानी वर्किङ्ग कमेटी, जिसका अध्यक्ष भी नव-निर्वाचित राष्ट्रपति होगा, इस बैठक में, इन प्रस्तावों को पेश करती है, जो कि विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों से प्राप्त होते हैं। इस पर विचार करने के बाद ये ही प्रस्ताव अधिवेशन में पेश किये जाते हैं।

राष्ट्रीय पताका

राष्ट्रीय पताका देश की, और जागरण की भावनाओं की प्रतीक है। इसके द्वारा जनता में साहस का संचार, क्रियाशील होने का सन्देश, देश-प्रेम तथा शक्तियों, जातियों एवं धर्मों का एकीकरण होता है। पराधीन देशों के स्वाधीनता-संग्राम में तो इसका महत्त्व और भी अधिक होता है। संग्राम के लिए सब कुछ अर्पित करने को वही प्रेरित करता है। पराधीन भारतीयों को अपनी स्वाधीन पताका के सम्मान के लिए बहुत ख़ून बहाना पड़ा है। संग्राम की भाँति ही उसके लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करना पड़ा है। यही कारण है कि कांग्रेस का तिरंगा झण्डा इतना लोकप्रिय हो गया है।

अनुमानतः १९०६ में इंग्लैंड तथा फ्रांस में प्रवास करने वाले भारतीयों ने भारतीय जातीय पताका बनाई, जिसमें तीन विभिन्न रंग थे। इसमें नीचे की ओर पीला रंग था। बीच में सफ़ेद रंग था, जिस पर 'बन्देमातरम्' लिखा था और ऊपर केसरिया रंग था, जिस पर एक कतार में दस कमल बने थे। अतः पताका की आवश्यकता सर्व प्रथम नवयुवकों की ओर से अनुभव की गई। १९०७ में बंग-भंग के दिनों में जाग्रत बंगाल ने इसे प्रदान किया। ऐसा भी कुछ का मत है।

१९१६ में किन्हीं बुजुर्ग नेताओं का भी ध्यान इस ओर गया। यह समय 'होम-रूल' आन्दोलन का था। फिर कई प्रकार के झंडे बनाकर जनता के सम्मुख रक्खे गये, लेकिन हरे और लाल रंग की विशेषता रही।

जब देश की बागडोर महात्मा गान्धी के हाथों में आई और उन्होंने देश के प्रति अपना सर्वस्व अर्पण कर अपना कार्यक्रम बनाया तो देश ने उनका अनुसरण करने में अपना परम सौभाग्य समझा। परिणाम महात्माजी की 'राष्ट्रीय पताका' की योजना सर्वमान्य हुई। यह पताका १६२१ से ८ अगस्त १६३१ तक देश का प्रतीक मानी गई। इसमें ऊपर सफ़ेद, बीच में हरा और नीचे लाल रंग था तथा उस पर चर्खे का चित्र ऐसा रहता था कि उसका कुछ भाग सभी रंगों पर पड़े। प्रथम बार यह झंडा १६२१ में अहमदाबाद के कांग्रेस-अधिवेशन में फहराया गया। यद्यपि कांग्रेस ने इसे नियमित तौर पर कभी स्वीकार नहीं किया और न कोई प्रस्ताव ही इस सम्बन्ध में पास किया, तथापि यह देश का झंडा स्वीकार किया गया। इन रंगों को किसी जाति या धर्म के आधार पर निर्धारित नहीं किया गया था और न देश के प्रतीक के प्रति कोई जातीयता अथवा संकुचित धार्मिकता पेश ही करनी चाहिए। लेकिन अभागे भारतवर्ष में इसकी कमी भी कभी नहीं रही। फलत: लोग उन रंगों की व्याख्या अपने भावानुसार करने लगे। इस ओर सिखों ने विशेष चेष्टा दिखलाई और पंजाब में तो यत्र-तत्र चार रंगों के झंडे भी फहराये गये।

१६३० में साबरमती में कांग्रेस-कार्य-समिति की जो बैठक हुई उसमें इस पर विचार किया गया। साथ ही २७ फरवरी १६३० को महात्माजी ने 'यंग इण्डिया' में एक लेख लिखा। तदनन्तर अगस्त १६३१ में बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की जो बैठक हुई उसमें इस प्रश्न पर विचार किया गया और झंडे में लाल रंग के स्थान में केसरिया रखने का निश्चय किया गया। क्रम में भी परिवर्तन किया गया। देश की वर्तमान पताका में सबसे ऊपर केसरिया, बीच में सफ़ेद और नीचे हरा रंग है। ठीक बीचों-बीच सफ़ेद रंग पर चरखे का चित्र रहता है। चरखे का चक्र स्तम्भ की ओर और तकुआ सामने की ओर रहता है। लम्बाई-चौड़ाई में वह ३-२ के परिणाम का होता है। यह शुद्ध खादी का होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह हाथ के कते-बुने सिल्क व ऊन का भी हो सकता है।

कांग्रेस के सभापति

अधिवेशन	नाम
पहला	श्री उमेशचन्द्र बनर्जी
दूसरा	,, दादा भाई नौरोजी
तीसरा	,, बदरुद्दीन तैयबजी
चौथा	,, जार्ज यूल
पाँचवाँ	सर विलियम वेडरबर्न
छठा	सर फीरोजशाह मेहता
सातवाँ	श्री पी० आनन्द चालू
आठवाँ	,, उमेशचन्द्र बनर्जी
नवाँ	,, दादा भाई नौरोजी
दसवाँ	,, अलफ्रेड वेब
ग्यारहवाँ	,, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
बारहवाँ	मा० मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी
तेरहवाँ	श्री शंकरन नायर
चौदहवाँ	,, आनन्द मोहन बसु
पन्द्रहवाँ	,, रमेशचन्द्र दत्त
सोलहवाँ	,, नारायण गणेश चन्द्रावरकर
सत्रहवाँ	,, दीनशा ईदलजी वाचा
अठारहवाँ	,, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
उन्नीसवाँ	,, लालमोहन घोष
बीसवाँ	सर हेनरी काटन
इक्कीसवाँ	मा० गोपालकृष्ण गोखले
बाईसवाँ	श्री दादा भाई नौरोजी
तेईसवाँ	डॉ० रासविहारी घोष
चौबीसवाँ	पं० मदनमोहन मालवीय
पच्चीसवाँ	सर विलियम वेडरबर्न
छब्बीसवाँ	श्री बिशननारायण दर
सत्ताईसवाँ	रा०ब० रंगनाथ नृसिंह मुधोलकर

अट्ठाईसवाँ	नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर
उन्तीसवाँ	श्री भूपेन्द्रनाथ वसु
तीसवाँ	सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिंह
इकत्तीसवाँ	बा० अम्बिकाचरण मजूमदार
बत्तीसवाँ	श्रीमती एनीबिसेंट
विशेष	सय्यद हसन इमाम
तैंतीसवाँ	पं० मदनमोहन मालवीय
चौंतीसवाँ	पं० मोतीलाल नेहरू
विशेष	लाला लाजपतराय
पैंतीसवाँ	चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य
छत्तीसवाँ	हकीम अजमल खाँ
सैंतीसवाँ	देशबन्धु चित्तरंजनदास
विशेष	मौ० अबुलकलाम आज़ाद
अड़तीसवाँ	मौ० मुहम्मद अली
उन्तालीसवाँ	महात्मा गान्धी
चालीसवाँ	श्रीमती सरोजिनी नायडू
इकतालीसवाँ	श्री श्रीनिवास आयंगर
बयालीसवाँ	डॉ० मुख्तार अहमद अन्सारी
तैंतालीसवाँ	पं० मोतीलाल नेहरू
चवालीसवाँ	पं० जवाहरलाल नेहरू
पैंतालीसवाँ	सरदार बल्लभ भाई पटेल
छियालीसवाँ	सेठ रणछोड़लाल अमृतलाल
सैंतालीसवाँ	बा० राजेन्द्रप्रसाद
अड़तालीसवाँ	पं० जवाहरलाल नेहरू
उनचासवाँ	"
पचासवाँ	बा० सुभाषचन्द्र बोस
इक्यावनवाँ	"
बावनवाँ	मौ० अबुलकलाम आज़ाद
तिरेपनवाँ	आचार्य जे० बी० कृपलानी

अंग्रेजों के झूठे वायदे

लार्ड हार्डिङ्ग (वायसराय)

भारत के राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना में सरकार प्रान्तीय स्व-तन्त्रता के सिद्धान्त को स्वीकार करती है।

(२५ अगस्त १६११)

मांटेगू (भारत-मन्त्री)

भारत में अँग्रेजी राज्य का अन्तिम लक्ष्य शासन के प्रत्येक विभाग में अधिक-से-अधिक हिन्दुस्तानियों को शामिल करना व हिन्दुस्तान में स्व-शासन की ऐसी क्रमबद्ध उन्नति, जिसके परिणामस्वरूप वह अंग्रेजी साम्राज्य के अन्तर्गत रहते हुए पूर्ण उत्तरदायी शासन की ओर अग्रसर हो सके, होगा। इस नीति में प्रगति क्रमशः ही अर्थात् सीढ़ी-दर-सीढ़ी होगी। ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार ही, कब और कितना क़दम आगे बढ़ाना चाहिए, इस बात के निर्णायक होंगे।

(२० अगस्त १६१७)

जार्ज पञ्चम (सम्राट्)

वर्षों से—या सम्भवतः पीढ़ियों से देशभक्त और राजभक्त भारतीय अपने देश के लिए स्वराज्य का स्वप्न ले रहे हैं। आज मेरे साम्राज्य के अन्तर्गत आपने स्वराज्य का श्रीगणेश किया है। मेरे अन्य उपनिवेशों को प्राप्त स्वाधीनता की दिशा में उन्नति का विशाल क्षेत्र और पर्याप्त अवसर भी आपको आज प्राप्त हुआ है।

(६ फरवरी १६२१)

रैम्जे मैकडानल्ड (प्रधान-मन्त्री)

मुझे आशा है कि वर्षों नहीं, कुछ ही महीनों में हमारे राष्ट्रों के कामनवैल्थ में एक नया उपनिवेश सम्मिलित हो जायगा। यह उपनिवेश विभिन्न जाति का होगा, जो कामनवैल्थ में समान आदर व स्थिति का पात्र होगा। मैं भारत की चर्चा कर रहा हूँ। (२ जुलाई १६२८)

जार्ज पञ्चम (सम्राट्)

हमारी सर्वोपरि इच्छा और प्रसन्नता इसमें है कि हमारे साम्राज्य के अन्तर्गत रहते हुए ब्रिटिश भारत को क्रमशः उत्तरदायी शासन-प्राप्ति के लिए पार्लमेंट ने जो योजना बनाई है, वह इस प्रकार सफल हो कि हमारे उपनिवेशों में ब्रिटिश भारत को भी अपने योग्य स्थान मिले।

(जून १९२९)

लार्ड इरविन (वायसराय)

ब्रिटिश सरकार के इरादों के सम्बन्ध में ग्रेट ब्रिटेन व भारत में फैले हुए सन्देह को दूर करने के लिए ब्रिटिश सम्राट् की सरकार ने मुझे यह स्पष्ट घोषित कर देने का अधिकार दिया है कि १९१७ की घोषणा में यह अभिप्राय असंदिग्ध रूप से है कि अन्त में भारत को उपनिवेश का दर्जा मिले।

(३१ अक्टूबर १९२९)

वैजवुडबैन (भारत-मन्त्री)

भारत में ब्रिटिश-नीति का उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति कई बार घोषित किया गया है। हमें यह औपनिवेशिक स्वराज्य क्रिया में लाना चाहिए।

(१८ दिसम्बर १९२९)

लार्ड इरविन (वायसराय)

विधान सम्बन्धी प्रश्न पर सम्राट् की अनुमति से यह तय हुआ है कि हिन्दुस्तान के वैध शासन की उसी योजना पर आगे विचार किया जायगा, जिस पर गोलमेज परिषद् में पहले विचार हो चुका है। वहाँ जो योजना बनी थी, संघ-शासन उसका एक अनिवार्य अङ्ग है, इसी प्रकार भारतीय उत्तरदायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा [illegible], [illegible] [illegible] अल्पसंख्यक जातियों की स्थिति, भारत की [illegible] की अदायगी जैसे विषयों के प्रतिबन्ध या संरक्षण भी उसके आवश्यक भाग हैं। (५ मार्च १९३१)

लार्ड विलिंगडन (वायसराय)

ब्रिटिश सरकार की परम अभिलाषा है कि भारत उत्तरदायी शासन के उद्देश्य तक प्राप्ति करता हुआ सम्राट् की छत्र-छाया में अन्य उपनिवेशों की भाँति पूर्ण समान स्थिति तक पहुँच जाय।

(१७ अप्रैल १९३१)

लार्ड जेटलैंड (भारत-मन्त्री)

ब्रिटिश सरकार भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने के निश्चय पर आज भी कटिबद्ध है। (अप्रैल १९३९)

लार्ड लिनलिथगो (वायसराय)

युद्ध के उद्देश्य अभी स्पष्ट नहीं किये जा सकते; लेकिन भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने की प्रतिज्ञा पर ब्रिटेन अब भी स्थिर है।

(१७ अक्टूबर १९३९)

लार्ड लिनलिथगो (वायसराय)

ब्रिटिश सम्राट्-सरकार का उद्देश्य यथापूर्व सङ्घ-विधान अब भी है। लेकिन वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय विषम परिस्थितियों में और अपने सामने आये हुए असाधारण कार्य को देखते हुए सङ्घ-विधान को अपना उद्देश्य मानते हुए भी उसकी तैयारियों को स्थगित करने के सिवाय हमारे सामने कोई मार्ग नहीं है। (११ सितम्बर १९३९)

लार्ड लिनलिथगो (वायसराय)

वे (लार्ड इरविन के [illegible] [illegible]राज्य के उद्देश्य सम्बन्धी शब्द) स्पष्ट और [illegible] [illegible]ेंट के रिकार्ड में लिखे हुए हैं। वे भारत के भावी वैधानिक विकास के सम्बन्ध में ब्रिटिश सम्राट् की सरकार की नीति को निश्चित और स्पष्ट शब्दों में प्रकाशित करते हैं। मैं इसमें केवल इतना और परिवर्तन करना चाहता हूँ कि गवर्नर-जनरल के नाते ब्रिटिश सम्राट् ने मई १९३७ में मुझे जो हिदायतें दी थीं, उनमें लिखा था कि हमारे साम्राज्य के अन्तर्गत भारत और

इंग्लैंड में साझीदारी को यहाँ तक बढ़ाया जाय कि भारत हमारे उपनिवेशों में उचित स्थान प्राप्त करले।

मुझे ब्रिटिश सम्राट् की सरकार से यह भी कहने का अधिकार दिया गया है कि युद्ध के बाद सरकार भारत के विभिन्न जातियों, दलों और हितों के प्रतिनिधियों तथा देशी राज्यों से विचार-विनिमय करेगी, ताकि वाञ्छनीय सुधारों तक पहुँचने में उनका सहयोग प्राप्त किया जा सके।

(अक्टूबर १६३६)

लार्ड लिनलिथगो (वायसराय)

हिन्दुस्तान में अंग्रेजी-नीति का लक्ष्य युद्ध के समाप्त होने के बाद, कम-से-कम समय में पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य वेस्ट मिनिस्टर पद्धति के औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है।

(१० जनवरी १६४०)

लार्ड लिनलिथगो (वायसराय)

नये विधान के बनाने के लिए युद्ध के बाद एक प्रतिनिधि भारतीय संस्था का निर्माण आवश्यक होगा और इस बीच अँग्रेजी सरकार उन प्रयत्नों का स्वागत और उनसे पूरा सहयोग करेगी, जो विधान बनाने वाली इस संस्था की रूपरेखा और कार्य-पद्धति के सम्बन्ध में एकमत बनाने की दिशा में किये जायेंगे।

कोई भी वैधानिक योजना अल्पसंख्यकों की सहमति के बिना कार्यान्वित नहीं की जायगी। हिन्दुस्तान के भावी विधान के निर्माण का उत्तरदायित्व प्रधानतः हिन्दुस्तानियों पर ही होगा और उसका आधार भारतीय जीवन को व्यक्त करने वाली सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं की भारतीय कल्पनाओं पर होगा; लेकिन साथ ही अँग्रेजी सरकार अपने उन कर्त्तव्यों और अधिकारों को भी नहीं भुला सकेगी, जो उसने हिन्दुस्तान के साथ के अपने दीर्घकालीन सम्पर्क से प्राप्त किये हैं।

(अगस्त १६४०)

मि० चर्चिल (प्रधान-मन्त्री)

संयुक्त घोषणा-पत्र (एटलांटिक चार्टर) किसी भी स्थिति में उन विविध वक्तव्यों पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा, जो समय-समय पर भारत बर्मा तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों के सम्बन्ध में किये गये हैं। एटलांटिक चार्टर केवल उन्हीं राष्ट्रों पर लागू होगा जो आज नाज़ी-चक्र के शिकार हो गये हैं।

(६ सितम्बर १६४१)

क्रिप्स-प्रस्ताव

१—भारतीय-सङ्घ का दर्जा आन्तरिक व्यवस्था व विदेशी सम्बन्धों के क्षेत्र में ब्रिटिश कामनवेल्थ के अन्य उपनिवेशों की बराबरी का होगा।

२—भारतीय सङ्घ के विधान का निर्माण अँग्रेजी पार्लमेन्ट के द्वारा नहीं, जनता द्वारा चुनी सभा के द्वारा होगा।

३—विधान निर्मात्री सभा में देशी राज्यों का भाग लेना अनिवार्य होगा।

४—इस भारतीय सङ्घ में शामिल होने या न होने का अधिकार प्रान्तों को होगा—वे यदि चाहेंगे तो अपनी वर्तमान वैधानिक स्थिति को क़ायम रख सकेंगे और बाद में भी भारतीय सङ्घ में शामिल होने की उन्हें स्वाधीनता होगी। यदि वे चाहेंगे तो अपने लिए अलग विधान बना लेने का अधिकार भी उन्हें होगा।

५—इस विधान-निर्मात्री सभा और अँग्रेजी सरकार के बीच एक सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किये जायँगे, जिसमें उन सब आवश्यक बातों का विस्तृत लेखा होगा जो अँग्रेजों के हाथ में सत्ता के सम्पूर्ण रूप से दिये जाने से सम्बन्ध रखती हों।

६—इस सन्धि-पत्र में अँग्रेजी सरकार द्वारा दिये गये आश्वासनों के आधार पर जातीय और धार्मिक अल्पसंख्यक वर्गों के संरक्षण का पूरा निर्वाह होगा।

७—युद्ध के समाप्त हो जाने पर प्रान्तीय चुनाव होंगे और उनके फ़ौरन बाद ही प्रान्तीय धारा-सभाओं के नीचे के चेम्बरों के समस्त सदस्य मिलकर आनुपातिक सिद्धान्त के आधार पर एक विधान-निर्मात्री सभा का चुनाव करेंगे, जिसके सदस्यों की संख्या चुनाव करने वाली सभा का दशमांश होगी।

८—यदि प्रमुख सम्प्रदायों के नेता विधान निर्मात्री सभा के चुनाव के लिए किसी अन्य सिद्धान्त पर सहमत हो सकें तो उसे स्वीकृत किया जा सकेगा। वैसा न होने पर उसका चुनाव उपर्युक्त पद्धति से ही होगा।

९—इस विधान-निर्मात्री सभा में भारतीय राज्यों को अपनी आबादी के उसी अनुपात में प्रतिनिधि नियुक्त करने का अधिकार होगा जिसमें ब्रिटिश भारत के सदस्य चुने गये होंगे और उन्हें अधिकार भी वैसे ही होंगे, जैसे ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों को।

लार्ड वेवल (वायसराय)

अँग्रेजी सरकार की मन्शा हिन्दुस्तान को पूर्ण स्वराज्य की ओर ले जाने की है और वह किसी प्रकार का वैधानिक समझौता उस पर लादना नहीं चाहती।

(१४ जून १९४५)

मि० एमरी (भारत-सचिव)

मार्च १९४२ का प्रस्ताव अभी तक यथापूर्व क़ायम है। इस प्रस्ताव के आधार दो मुख्य सिद्धान्त हैं—

भारत की स्वतन्त्रता पर किसी तरह की कोई पाबन्दी नहीं है। वह यह निश्चय करने में स्वतन्त्र है कि वह कामनवैल्थ में स्वतन्त्र साझीदार बनकर रहेगा या ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र बनना चाहता है। दूसरा सिद्धान्त यह है कि यह स्वतन्त्रता केवल भारतीयों द्वारा एक या अनेक विधान बनाकर ही प्राप्त की जा सकती है। सभी श्रेणियों की सहमति इसमें आवश्यक होगी। ये सिद्धान्त अपने

क्षेत्र आदि की दृष्टि से पूर्ण हैं। उस विधान में कमोबेश करने का अधिकार किसी को न होगा।

(१४ जून १९४५)

लार्ड वेवल (वायसराय)

ब्रिटिश सरकार की इच्छा है कि जल्दी-से-जल्दी एक विधान-निर्मात्री-परिषद् की आयोजना की जाय और उसके प्रारम्भिक क़दम के स्वरूप मुझे यह अधिकार दिया गया है कि चुनावों के एकदम बाद में प्रान्तीय असेम्बलियों के प्रतिनिधियों से परामर्श करूँ कि क्या वे १९४२ के प्रस्ताव को स्वीकृत करते हैं? यदि नहीं तो उनमें क्या संशोधन चाहते हैं। ········ मुझे सम्राट् की सरकार ने यह भी अधिकार दिया है कि भारत की प्रमुख पार्टियों के सहयोग से मैं अपनी समिति का पुनः सङ्गठन करूँ।········ इसका अर्थ है कि सम्राट् की सरकार यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र भारत को स्वशासन देने के लिये कृत-निश्चय है।

(१९ सितम्बर १९४५)

मि० एटली (प्रधान-मन्त्री)

हिन्दुस्तान को इस बात का चुनाव करना है कि उसका भविष्य क्या होगा और दुनिया में उसे क्या स्थान प्राप्त करना है? वह ब्रिटिश कामनवैल्थ का सदस्य बना रहे, यह मेरी इच्छा है और मेरी सम्मति में उसके लिये भी यही हितकर है। लेकिन उसके विपरीत यदि वह कामन-वैल्थ से पृथक पूर्ण स्वतन्त्रता का चुनाव करता है, जैसा करने का उसे पूर्ण अधिकार है, तो यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसे जितनी आसानी से सत्ता सौंप सकें, सौंप दें।

·····हमें अल्पसंख्यक जातियों के हितों का पूरा-पूरा ध्यान है, उन्हें निर्भीक होकर जीने का अधिकार है, लेकिन हम किसी अल्पसंख्यक जाति को बहुसंख्यकों की प्रगति में रुकावट डालने की इजाज़त नहीं देंगे।

(२५ मार्च १९४६)

काँग्रेस की माँग

बम्बई-कांग्रेस (प्रथम अधिवेशन)

बड़ी और मौजूदा प्रान्तीय कौंसिलों का सुधार और आकार-वृद्धि करने के लिए निर्वाचित सदस्यों की संख्या या उनका अनुपात बढ़ा दिया जाय। (दिसम्बर १८८५)

कलकत्ता-कांग्रेस

स्वराज्य-प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन-प्रणाली है वही भारतवर्ष में भी जारी की जाय। (दिसम्बर १९०६)

लखनऊ-कांग्रेस

अब वह समय आया है कि जब सम्राट् इस आशय की घोषणा करें कि ब्रिटिश-नीति का लक्ष्य यह है कि वह भारत में शीघ्र ही स्व-शासन-प्रणाली को जारी करें। (दिसम्बर १९१६)

लोकमान्य तिलक

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। (१९१८)

अमृतसर-कांग्रेस

यह कांग्रेस अपने पिछले वर्ष की इस घोषणा को दुहराती है कि भारतवर्ष पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के योग्य है। (दिसम्बर १९१९)

मद्रास-कांग्रेस

यह कांग्रेस घोषित करती है कि भारतीय जनता का लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता है। (दिसम्बर १९२७)

कलकत्ता-कांग्रेस

यद्यपि यह कांग्रेस मद्रास कांग्रेस के पूर्ण स्वाधीनता के निश्चय पर क़ायम है, तथापि यह कमेटी (नेहरू कमेटी) द्वारा तैयार किये गये विधान को राजनीतिक प्रगति की दिशा में एक बड़ा पग मानकर उसे

मंजूर करती है।……यदि ३१ दिसम्बर १९२९ तक या उससे पहले पार्लमैंट उसे मंजूर करले, तो कांग्रेस इस विधान को स्वीकार कर लेगी।
(दिसम्बर १९२८)

लाहौर-कांग्रेस

गत वर्ष कलकत्ते के अधिवेशन में किये हुए अपने निश्चयानुसार यह कांग्रेस घोषणा करती है कि कांग्रेस-विधान की पहली धारा में 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ 'पूर्ण स्वाधीनता' होगा। कांग्रेस यह भी घोषणा करती है कि नेहरू कमेटी की रिपोर्ट में वर्णित सारी योजना खतम समझी जाय। (दिसम्बर १९२९)

स्वाधीनता की घोषणा

हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भाँति अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहें। … हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अँग्रेजों से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिये।

……अतः हम शपथपूर्वक सङ्कल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के लिए कांग्रेस समय-समय पर जो आज्ञाएँ देगी, उसका हम पालन करेंगे। (२६ जनवरी १९३०)

गांधीजी द्वारा स्वराज्य की शर्तें

१—सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।

२—विनियम की दर घटाकर एक शिलिंग चार पैंस रखदी जाय।

३—जमीन का लगान आधा कर दिया जाय और उस पर कौंसिलों का नियन्त्रण रहे।

४—नमक-कर उठा लिया जाय।

५—सैनिक-व्यय में आरम्भ में ही कम-से-कम ५० फ़ीसदी कमी करदी जाय।

६—लगान की कमी को देखते हुए बड़ी-बड़ी नौकरियों के वेतन कम-से-कम आधे कर दिए जायँ।

७—विदेशी कपड़े के आयात पर निषेध-कर लगा दिया जाय।

८—भारतीय-समुद्र-तट का व्यापार केवल भारतीय जहाज़ों के लिए सुरक्षित रखने का प्रस्तावित क़ानून पास कर दिया जाय।

९—हत्या या हत्या के प्रयत्न में साधारण ट्रिब्युनलों द्वारा सज़ा पाये हुये व्यक्तियों के सिवा, समस्त राजनीतिक क़ैदी छोड़ दिये जायँ, सारे राजनीतिक मुकदमे वापिस ले लिये जायँ, १२४ अ धारा, १८१८ का रेगुलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयों को देश में वापिस आ जाने दिया जाय।

१०—खुफ़िया पुलिस उठा दी जाय, अथवा उस पर जनता का नियन्त्रण कर दिया जाय।

११—आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के परवाने दिये जायँ और उन पर जनता का नियन्त्रण रहे। (मार्च १९३१)

हरीपुरा-कांग्रेस

भारत ऐसा ही विधान स्वीकृत करेगा, जिसका आधार स्वतन्त्रता होगा और जिसे बिना किसी विदेशी शक्ति से प्रभावित होकर भारतीय जनता ने स्वयं विधान-निर्मात्री-सभा द्वारा बनाया हो। (फरवरी १९३८)

कांग्रेस-कार्य-समिति

ब्रिटिश सरकार को भारत की स्वतन्त्रता और विधान-निर्मात्री सभा द्वारा अपना विधान बनाने का अधिकार स्वीकृत करना चाहिये।

(नवम्बर १९४०)

कांग्रेस-कार्य-समिति

केवल एक स्वतन्त्र भारत ही राष्ट्रीय आधार पर अपने देश की रक्षा करने की स्थिति में हो सकता है। (अप्रैल १९४२)

मौलाना आज़ाद (राष्ट्रपति)

ब्रिटिश सरकार भारत की स्वाधीनता पर हस्ताक्षर करदे और उसके साथ ही हम संयुक्त राष्ट्रों से आक्रमणकारी के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होने की सन्धि कर लेंगे। (७ अगस्त १९४२)

अ० भा० कांग्रेस कमेटी

अ० भा० कांग्रेस कमेटी कार्यसमिति के १४ जुलाई १६४२ के प्रस्ताव का समर्थन करती है और उसकी यह सम्मति है कि इसके बाद आने वाली घटनाओं ने इसे अधिक उचित सिद्ध कर दिया है कि भारत में ब्रिटिश शासन की तत्कालीन समाप्ति अनिवार्यतः आवश्यक है न केवल भारत के लिए, प्रत्युत संयुक्त राष्ट्रों के उद्देश्य की सफलता के लिए भी। इस शासन का और जारी रहना भारत के लिए अत्यन्त आपत्तिजनक ही नहीं, प्रत्युत भारत को लगातार दुर्बल करने वाला भी सिद्ध हो रहा है।

..... आज के खतरे को देखते हुए भारत की स्वतन्त्रता और ब्रिटिश प्रभुत्व की समाप्ति और भी आवश्यक हो गई है। भविष्य के लिए कोई प्रतिज्ञा या गारण्टी इस खतरे को दूर नहीं कर सकती।

..... अ० भा० कांग्रेस कमेटी इसलिए अपनी पूर्ण शक्ति के साथ यह माँग करती है कि ब्रिटिश सरकार भारत को छोड़कर जल्दी-से-जल्दी चली जाय। (८ अगस्त १६४२)

कांग्रेस-चुनाव-घोषणा-पत्र

मातृभूमि की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है और इसी में से राष्ट्र के लिये सभी प्रकार की स्वतन्त्रतायें निकलेंगी। कांग्रेस अपने ८ अगस्त १६४२ के प्रस्ताव पर अटल है और इस युद्ध-घोषणा को (भारत छोड़ो) लेकर यह चुनाव लड़ रही है।

(दिसम्बर १६४५)

अ० भा० कांग्रेस कमेटी

अ० भा० कांग्रेस कमेटी को यह विश्वास है कि भारतीय जनता की पूर्ण स्वाधीनता आज और विशेष रूप से आज के विश्व के तुमुल संघर्ष में, न केवल भारत के लिए, बल्कि समस्त संसार के लिए आवश्यक है। कमेटी का यह भी विश्वास है कि सच्ची शक्ति और स्वाधीनता केवल

राष्ट्रों के पारस्परिक सहयोग से प्राप्त हो सकती है····· यदि विश्व-युद्ध का उद्देश्य स्वाधीनता और प्रजातन्त्र है, तो भारत में भी साम्राज्यवाद की समाप्ति और भारत की स्वाधीनता की स्वीकृति भी उसमें सम्मिलित होनी चाहिए। (१५ जनवरी १९४६)

सरदार पटेल

१—भारत को तुरन्त ही अधिकार मिलें। वह देरी बर्दाश्त नहीं कर सकता।

२—अल्पमतों के अधिकारों की रक्षा के लिये कांग्रेस उचित 'सेफ गार्ड्स' स्वीकार करने को तैयार है; लेकिन मि० जिन्ना की पाकिस्तान की योजना स्वीकार नहीं की जा सकती।

३—यदि हमें अधिकार सौंप दिये जायँ, तो उससे किसी प्रकार की गड़बड़ होगी, ऐसी सम्भावना कांग्रेस नहीं करती।

४—अगले कुछ सप्ताहों में भारतीय समस्या आपसी समझौते से सुलझाने का ब्रिटेन को अन्तिम और सबसे बड़ा मौक़ा है।

५—यदि अधिकार तत्काल दे दिये गये, तो ब्रिटेन व भारत के बीच की वर्तमान कड़वाहट दूर होकर दोनों देशों में दोस्ती स्थापित हो सकती है।

६—जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय और विदेशी नीति का सम्बन्ध है, स्वतन्त्र भारत सदैव विश्व-शान्ति का पक्ष लेगा। उसकी नीयत किसी पर हमले की नहीं।

७—स्वतन्त्र भारत की अपनी सेना होगी, वह देश की आन्तरिक व बाह्य सुरक्षा के लिये ज़िम्मेवार होगा। लेकिन वह दूसरे राष्ट्रों के समान कोई बड़ी सेना न बनायेगा; क्योंकि उसकी किसी दूसरे देश पर हमले की नीयत नहीं।

८—स्वतन्त्र भा[illegible] रखने की चेष्टा करेगा। (५ मार्च १९४६)